भारतीय वैज्ञानिकों की कहानियाँ

श्यामलाल 'मधुप'

सुनील साहित्य सदन
दिल्ली-११००५३

दो शब्द

प्राचीन काल से हमारा देश विज्ञ.न के क्षेत्र मे अग्रसर रहा है। वर्तमान समय मे अमरीका, रूस जैसे देशो को विज्ञान के क्षेत्र मे अग्रसर माना जाता है लेकिन यदि हम विज्ञान क्षेत्र के अतीत पर दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा देश भारत महाभारत काल मे विज्ञान का विश्व के अन्दर बहुत बडा क्षेत्र रहा है। उस काल मे कौरवो और पाण्डवो के मध्य जो महायुद्ध हुआ था उसमे अग्नि बाणो तथा अन्य प्रकार के ऐसे बाणों का वणन मिलता है जिनको यदि आज परमाणु बम्ब, एटम बम्ब आदि का रूप मानें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि हमारे वेदो का अध्ययन करके अमरीका, रूस आदि ने विज्ञान मे उन्नति की है।

यह सत्य है कि जिस देश मे विज्ञान-साहित्य का अभाव होगा वह आज के युग मे प्रगति नही कर सकता। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के क्षेत्र मे विद्यार्थियो को आरम्भ से ही विज्ञान की शिक्षा दी जाए ताकि देश उन्नति की ओर अग्रसर हो सके।

यदि हम अपने वैज्ञानिको पर दृष्टि डाले तो हमे ज्ञात होगा कि उन्होने अपने अथक परिश्रम तथा लगन से हमे चमत्कारिक वस्तुएँ प्रदान की है। आज के इस वैज्ञानिक युग मे जो चीजें हम देख रहे है जैसे रेडियो, टेलीविजन, हवाई जहाज, वायरलैस, बिजली तथा बडे-बडे कारखाने, यह सब विज्ञान की ही देन हैं। वास्तव मे यह विज्ञान का ही परिणाम है जो आज का मानव कही से कही पहुँच गया है।

अमरीका के विज्ञान की ओर यदि एक दृष्टि डालें तो एटम,

परमाणु बम्ब के अतिरिक्त उन्होने करोडो किलोमीटर दूर चाँद मे पहुँच कर विश्व को आश्चयचकित किया है। हमारे देश मे बच्चो को 'चन्दा मामा' के नाम से अनेक पौराणिक कथाएँ सुनाई जाती रही हैं। यहाँ तक की 'चन्द्रमा मे बुढिया चर्खा कात रही हैं' ऐसी कहानियाँ बच्चों को सुनाई जाती रही हैं। लेकिन विज्ञान में पौराणिक सभी कहानियो को झुठला कर साबित कर दिया है कि पृथ्वी, सूर्य की भाँति चाँद भी एक ग्रह है। उसमे न बुढिया है, न चर्खा, बल्कि ऊचे पहाड तथा सूखी नदिया हैं। अमरीका के वैज्ञानिक चाँद से जो मिट्टी लाये है, उनसे बहुत से तथ्य सामने आये हैं।

आज का युग विज्ञान का युग है। इस युग मे आज जहा बडे-बडे देश अनेक प्रकार के परीक्षण करके विज्ञान की नई खोज कर रहे हैं वहाँ हमारा देश भी पीछे नही है। हमारे देश मे बने नेट विमान ने अमरीका के प्रसिद्ध लडाकू विमान के छक्के छुडा दिये थे। हमारे यहाँ के बने रेडार, बम्बो ने पाकिस्तान की लडाई मे विश्व को चौका दिया था। यह सब हमारे देश के वैज्ञानिको का कमाल था जिन्होने विश्व मे तहलका मचा दिया था। विश्व की आँखें भारत पर टिक गई थीं। पिछले दिनो हमारे वैज्ञानिको ने राजस्थान पोखरन मे परमाणु परीक्षण किया था जो सफल रहा है। उसके बाद 'भास्कर' राकेट छोडा गया जो हमारे वैज्ञानिको का सफल प्रयास रहा है। और आज भी हमारे वैज्ञानिक विज्ञान के क्षेत्र मे कार्यरत है।

विज्ञान का प्रभाव आज के युग मे मानव के जीवन पर विशेष रूप से पड रहा है। जहाँ हम परमाणु शक्ति का प्रयोग विनाश के लिए कर सकते हैं वहाँ इस शक्ति का प्रयोग विकास कार्यो मे भी कर रहे है। जहा हमारे वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने पेड पौधो मे भी सप्राण जीवो की भाति जीवात्मा सिद्ध कर

आश्चयजनक कार्य किया है वही हमारे वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने रासायनिक क्षत्र मे, प्रोफेसर बीरबल साहनी ने वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र मे तथा डा० होमी जहाँगीर भाभा जैसे महान् वैज्ञानिको ने परमाणु शक्ति विज्ञान मे चमत्कारिक कार्य करके भारत का नाम ऊँचा किया है।

उपर्युक्त सभी बातो के आधार पर यदि हम अपने देश की वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर दृष्टि डालें तो हम महसूस करते है कि विद्यार्थियो को विज्ञान की शिक्षा सुचारु रूप से नही दी जाती। मैं तो यह समझता हूँ कि पश्चिमी देशो की भाँति आज हमारे देश मे प्रारम्भ से ही विद्यार्थियो को विज्ञान की विशेप रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए। इससे जहाँ हमारा देश विज्ञान के क्षेत्र मे उन्नति करेगा वही हमारे विद्यार्थी नई-नई चीजे ईजाद करके बेरोजगारी समस्या का भी समाधान निकाल सकेंगे। मेरा देश की समस्त शिक्षा सस्थाओ से निवेदन है कि वे विज्ञान का एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार कराएँ जिससे प्रारम्भ से ही विद्यार्थियो को उसकी ठोस शिक्षा मिल सके। साथ ही मैं भारत सरकार, विशेप रूप से उसके 'शिक्षा मत्रालय' से अनुरोध करता हूँ कि 'विज्ञान' विषय को प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक विषय बनाकर इसे अधिक-से-अधिक सहायता प्रदान की जाय ताकि इसकी उन्नति मे कोई बाधा न आ सके।

इसी उद्देश्य को समक्ष रख कर मैंने भारतीय वैज्ञानिको से विद्यार्थियो को परिचित कराने हेतु प्रश्नोत्तर रूप मे प्रस्तुत पुस्तक को लेखनीबद्ध किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि विद्यार्थी वर्ग इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर समुचित लाभ उठा सकेगा।

शाहदरा दिल्ली

—श्यामलाल मधुप'

कथा-क्रम

जगदीशचन्द्र बसु

"बच्चो ! यह चित्र, जो देख रहे हो, हमारे भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र वसु का है। इन्होने सबसे पहले पौधो मे जीवन

क्रिया का प्रमाण दिया था। इतना ही नही, इन्होंने विज्ञान के क्षेत्र मे और भी कई चमत्कारिक चीजें हमे प्रदान की हैं जिनका विवरण हम तुम्हें इनकी जीवन-कथा मे सुनायेंगे।

सबसे पहले हम तुम्हें इनके जन्मस्थान के विषय मे बताते हैं।

श्री जगदीशचन्द्र बसु का जन्म पूर्व बगाल के एक गाँव मैमनसिह मे ३० नवम्बर सन् १८५८ में हुआ था। इनके पिता का नाम भगवानचन्द्र बसु था। वे एक डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। न्यायप्रिय होने के कारण वे अधिक सम्मानित व्यक्तियो में गिने जाते थे। जगदीशचन्द्र बसु पर माता-पिता का अधिक प्रभाव पडा। बाल्यावस्थ मे ही इन्होंने कई धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन किया। इसी कारण रामायण व महाभारत जैसे महान् ग्रन्थो का इन पर गहरा प्रभाव पडा था।"

"बचपन मे क्या इतने बडे ग्रन्थो को पढ कर इन्होंने सब ज्ञान प्राप्त कर लिया था?" एक छात्र ने बीच में प्रश्न किया।

अध्यापक महोदय ने उत्तर दिया—"लगन और साहस से आदमी सब कुछ प्राप्त कर सकता है। प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के बाद उन्होने जब माता-पिता से ग्रन्थो के विषय मे सुना तो ये उन्हें पढने के लिए लालायित हो उठे। उसी के परिणाम-स्वरूप उनका गहन अध्ययन किया। इसमे इनके माता पिता तथा गुरुजन का अधिक हाथ रहा।

प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद जगदीशचन्द्र को कलकत्ता के सेंट ज़ेवियर हाई स्कूल मे दाखिल करा दिया गया। उस समय इनकी आयु करीब ग्यारह वर्ष की थी।

उस स्कूल मे इन्होने अपनी शिक्षा का कार्य सुचारु रूप से किया। इनकी लगन को देखकर सभी अध्यापक प्रसन्न थे। हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्हें सेंट ज़ेवियर कॉलिज मे दाखिल करा दिया गया।

कुछ एक परिस्थितियो के कारण जगदीशचन्द्र बी० ए० की परीक्षा न दे सके। उन्ही दिनो अनायास इन्हें इग्लैण्ड जाने का का मौका मिला। सन् १८८० मे ये इग्लैण्ड चले गये। वहाँ जाकर इन्होने डाक्टरी पढाना आरम्भ किया, किंतु उससे इनका दिल जल्दी ऊब गया। क्योकि चीड-फाड के कार्य से इनके मन मे ग्लानि उत्पन्न होने लगी और इनका स्वास्थ्य गिरने लगा था।"

"तो क्या इन्होंने डाक्टरी करना छोड दिया ?" दूसरे छात्र ने पूछा।

"हा," अध्यापक ने कहा, "शरीर-विज्ञान की विज्ञान की पढाई छोडकर ये कम्ब्रिज चले गए। कैम्ब्रिज में इन्होने अपनी शिक्षा क काय सुचारु रूप से किया। लन्दन की बी०एस-सी० और कैम्ब्रिज की नेचुरल साइस ट्राइपॉस डिग्री प्राप्त करने के बाद ये भौतिक विज्ञान की ओर प्रभावित हुए। क्योकि लार्ड रेले का, जो कि भौतिक विज्ञान के निपुण शास्त्री थे, इन पर गहरा प्रभाव पडा था।

"हालांकि भौतिक, रसायनशास्त्र व वनस्पति विज्ञान का इन्होने गहन अध्ययन किया था फिर भी भौतिक विज्ञान मे कुशल होने के बाद जगदीशचन्द्र अपने देश भारत लौट आये। उस समय इनकी आयु पच्चीस वर्ष के लगभग की थी। भारत आने पर इन्हें अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा। उन दिनो भारत पर अंग्रेजो शासन था। ज्यो त्यो कर इन्हें प्रेसिडेंसी कॉलिज मे भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक की नौकरी मिल गई।

"इसी बीच जगदीशचन्द्र का विवाह श्री दुर्गामोहन दास की पुत्री अबला दास के साथ हुआ। यह बात सन् १८८७ की है। उन दिनो भारत मे काले गोरे का भेद-भाव था। अंग्रेज भारतीयो को न तो उचित वेतन ही देते थे और न ही अच्छी नौकरी। इतना

ही नही, जो वेतन नियुक्त किया जाता था उसका भी आधा मुश्किल से मिलता था। जगदीशचन्द्र वसु के साथ भी यही बात थी। ऐसा व्यवहार इन्हें अच्छा न लगा, और इन्होंने स्वाभिमानी होने के कारण बिना वेतन कार्य करना आरम्भ कर दिया। इनके त्याग और अथक परिश्रम को देखकर शिक्षा निदेशक इनसे प्रभावित हुए और उन्होंने जगदीशचन्द्र वसु को बाइज्जत समस्त वेतन देकर सम्मानित किया।

"प्रेसिडेंसी कॉलिज मे ये प्रयोगशाला के निर्माण कार्य में तल्लीन रहे। और इन्हाने भाँति-भाँति के प्रयोग करने आरम्भ कर दिये। उन दिनो मार्कोनी, म्योरहेड तथा लाज आदि रेडियो, टेलीविजन और रडार आदि की तरगो का अध्ययन कर रह थे। सचार सम्बन्धी अनेक प्रयोग उन्हें करते देखे जगदीशचन्द्र ने भी अपने उपकरण द्वारा बिना तार का सहायता से सन्देश भेजने के प्रयोग आरम्भ कर दिये।

'सन् १८९६ मे जब इन्होंने अपने कई चमत्कारा का परिणाम रायल सोसाइटी का प्रेषित कि नो सब चकित रह गये। इनके कार्य से प्रभावित होकर लदन विश्वविद्यालय ने इन्हें 'डाक्टर ऑफ साइन्स' की उपाधि प्रदान की। इससे जगदीशचन्द्र वसु का उत्साह और भी बढ गया और इन्होंने अपना समस्त समय विज्ञान की सेवा मे लगाना आरम्भ कर दिया।

"अनेक प्रयोगा मे जुट रहने पर वसु ने कई दिशाओ मे सफलता प्राप्त कर ली। इन्होने अपने प्रयोगो को जनसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। सदेश द्वारा ७५ फुट तक एक घटी की ध्वनि, एक छोटे से विस्फोट के प्रयोग आदि ने जगदीशचन्द्र को उच्च कोटि के वैज्ञानिका मे ला खडा किया था।'

"सुना था कि इग्लैंड की रायल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस ने अपने अन्वेषणो के सम्बन्ध मे भाषण देने के लिए इन्हे इंग्लड

बुलाया था ?" एक छात्र ने प्रश्न किया ।

"हाँ, यह सत्य है।" अध्यापक महोदय ने उत्तर दिया—"जब इनकी चर्चा दूर दूर तक होने लगी और इनके प्रयोगो से वैज्ञानिको मे एक तहलका सा मच गया तो जगदीशचन्द्र वसु का नाम हर किसी की जुबान पर घूमने लगा। साइस के हर सस्थान ने इन्हे आमन्त्रित करना आरम्भ कर दिया। वे इनके भाषणो को सुनकर लाभ उठाना चाहते थे। सन् १८९७ मे इन्होने पहली बार रायल सोसायटी के समक्ष अपना भाषण दिया। इनके भाषण मे सभी अत्यधिक प्रभावित हुए।

"बसु ने कई एक ऐसे प्रयोग किये जिनका उपयोग किया जाने लगा। द्वितीय महायुद्ध के बाद बसु द्वारा आविष्कृत लघु तरगो का रडार व टेलीविजन आदि का प्रयोग होने लगा। विश्व भर मे जगदीशचन्द्र बसु इस काय के लिए प्रसिद्ध हो गये।

"इसी प्रकार अपने काय मे रत जगदीशचन्द्र को भारत सरकार की ओर से भारत का प्रतिनिधि बनाकर पेरिस भेजा गया। यह बात सन १९०० की है। पेरिस मे साइस कान्फ्रेंस मे सम्मिलित होकर बसु ने अपनी प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया उससे भारत का नाम उज्ज्वल हुआ।

"जगदीशचन्द्र बसु ने यह प्रमाणित किया कि पेड पौधो मे भी सप्राण जीवो की भाति ही जीवात्मा होती है। इन्होने यह सिद्ध कर दिखाया कि जिस प्रकार सप्राण जीवो को काटने मे शरीर मे प्रतिक्रिया होती है। उसी प्रकार पेड पौधो को काटने पर भी होती है। इनके इस प्रयोग ने साइस के इतिहास मे एक और नये अध्याय का शुभारम्भ कर दिया।

"जब लदन की रायल सोसायटी को इनके इस प्रयोग का पता चला तो उन्होने इन्हे आमन्त्रित किया। सन् १९०१ मे ये पुन लदन गये और इन्होने रायल सोसायटी के विद्वानो के सम्मुख

अपना भाषण दिया। शरीर क्रिया विज्ञान के क्षेत्र मे कई विद्वानो ने इनकी आलोचना की। शरीर क्रिया विज्ञान के विद्वान जान बर्डन सेडर्सन ने तो यहाँ तक कहा कि भौतिक विज्ञान मे जगदीशचन्द्र वसु ने आश्चयजनक काय किया है, किन्तु शरीर-क्रिया विज्ञान मे जो कुछ किया वह निराधार है। लेकिन वसु ने इसकी कोई चिन्ता नही की। ये अपने काय मे तल्लीन रहे। ये समझते थे, जो मैंने किया है वह ठीक है।

"एक दिन वही वात सामने आई। काफी दिनो तक वाद-विवाद चलता रहा। आखिर वसु ने प्रयोग द्वारा जब यह सिद्ध कर दिया तो विवश होकर रायल सोसायटी को इनके काय को स्वीकार करना पडा। और इस प्रकार वज्ञानिक तथ्यो का वसु को प्रथम आविष्कर्त्ता स्वीकार किया—

"वसु ने तीन मुख्य उपकरणो के सेटो का निर्माण किया (१) यान्त्रिक प्रतिचार रिकाडर, (२) वद्युत प्रतिचार रिकाडर, (३) वैद्युत एवणी।

"इसके अतिरिक्त चार अगो वाले पौधो का भी वसु ने अध्ययन किया। उनमे मिमोसा पुडिका, डेस्मोडियम गाइरेंस और बायोफाइटम सेंसिटिवम विशेष है।

"इसी प्रकार वसु अठारह वप तक निरतर अपने अथक परिश्रम मे जुटे रहे। इस बीच इनकी आलोचनाएँ भी हुई लेकिन हतोत्साहित नही हुए और अपने काय मे लगे रहे।"

"क्या वसु को अपने काय मे सफलता प्राप्त नही है ?"

"भला हिम्मत न हारने वालो को सफलता प्राप्त कसे न होती ! इन्होने अपने अथक परिश्रम से वह सब कुछ जनसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया जिसे विद्वान मानने का तयार न थे। अन्त मे इनके प्रयोगो से सभी प्रभावित हुए। और इस पर तीसरी बार इन्होने रायल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइस के सामने

अपना भाषण प्रस्तुत किया । ऑक्सफोर्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिको पर इनका अद्भुत प्रभाव पडा और उन्होने इनके प्रयोगो की मान्यता प्रदान कर दी ।

"इसी प्रकार जगदीशचन्द्र बसु ने कई देशो का भ्रमण किया और अपने प्रयोगो को प्रसिद्ध विद्वानो के समक्ष प्रस्तुत किया।

"इस प्रकार इनके काय से प्रभावित होकर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इन्हे 'डाक्टर ऑफ साइस' की उपाधि से सम्मानित किया।

"वसु परोपकारी व्यक्ति थे। दूसरो की सहायता करने मे ये सदैव अग्रणी रहते थे। एक बार पजाब विश्वविद्यालय ने इनके भाषणो के लिए इन्हे १२०० रुपये का पुरस्कार प्रदान करना चाहा, किन्तु इन्होने लेने से इनकार कर दिया और यह कह दिया कि यह राशि वैज्ञानिक अनुसधान करने वाले किसी छात्र को छात्र वत्ति के रूप मे दे दी जावे ।

"प्रेसिडेंसी कॉलिज मे कार्य करते हुए जगदीशचन्द्र वसु ने भारत मे भी अनुसधान केन्द्र स्थापित करने की योजना बनाई। इन्होने जनता के सहयोग से ग्यारह हजार रुपया एकत्र किया। कलकत्ता मे एक जगह प्राप्त कर ली । वही अपने जन्म दिवस पर बसु ने 'वोस अनुस धान सस्थान' का उद्घाटन किया ।

"वसु राष्ट्रसघ के सदस्य थे। जेनेवा मे राष्ट्रसघ की बैठक हुई तो वसु भी उसमे शामिल हुए। इसी तरह इन्होने यूरोप, मिस्र आदि देशो की यात्राएँ की।

"सन् १९२८ मे विदेश यात्रा से लौटकर आने पर प्रयाग विश्वविद्यालय ने इन्हें आमन्त्रित किया। दीक्षान्त समारोह मे इन्हे प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से 'डाक्टर ऑफ साइस' की उपाधि प्रदान की गई। ३० नवम्बर, १९२८ मे इनका अभिनन्दन किया गया। उस समय इनकी आयु ७० वप की थी।

"और एक दिन २७ नवम्बर, १९३७ को भारत के इस महान् वैज्ञानिक का हृदय गति रुक जाने के कारण गिरीडीह नामक स्थान पर देहान्त हो गया। इनके देहान्त से समस्त देश शोकातुर हो उठा था। आज जगदीशचन्द्र वसु तो हमारे बीच नही हैं लेकिन इन्होने विज्ञान के इतिहास मे जो नये अध्याय जोडे हैं, वे सदव इनकी याद दिलाते रहेंगे।"

आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय

"और यह चित्र है भारत के महान वैज्ञानिक आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय का। इन्होंने रसायन सम्बन्धी खोजें करके रसायन विज्ञान

के इतिहास मे एक अविस्मरणीय अध्याय का शुभारम्भ किया।

"प्रफुल्लचन्द्र राय का जन्म २ अगस्त, १८६१ ई० के दिन बंगाल के जैसोर जिले के एक छोटे से गाव रहली कतिपरा में हुआ था। इनके पिता हरिश्चन्द्र राय गाँव के जमीदार थे। वे शील स्वभाव, शिक्षित एव नवीन विचारो के व्यक्ति थे। अत प्रफुल्लचन्द्र राय पर अपने पिता का अधिक प्रभाव पडा।

"प्रारम्भिक शिक्षा गाँव मे ही हुई। गाँव मे एक हाई स्कूल था जिसकी स्थापना कभी इनके पिता ने 'मॉडल स्कूल' के रूप मे की थी। उसी स्कूल मे इन्होने हाई स्कूल तक शिक्षा ग्रहण की।

"आरम्भ से ही प्रफुल्लचन्द्र राय को पत्र पत्रिकाएँ पढने का बडा शौक रहा। विद्वान लेखको के उपन्यास, शोधपूर्ण ग्रथ, लेख आदि पढकर उनकी गहराई तक पहुँचने का ये यत्न किया करते थे। छोटी-सी छोटी बात पर गम्भीरतापूर्वक मनन किया करते। इस प्रकार छोटी सी उम्र मे ही इन्होने बहुत ज्ञान अर्जित कर लिया था।"

"रसायन सम्बन्धी पुस्तको का इन्होने अध्ययन करके क्या कार्य किया?" एक छात्र ने पूछा।

अध्यापक जी ने उत्तर दिया—"विज्ञान मे इनकी रुचि दिन-व दिन बढती रही। इन्होने रसायन सम्बन्धी जो भी पुस्तकें इन्हें मिली उनका गहन अध्ययन किया। ये रसायन के क्षेत्र म सफलता प्राप्त करने के आकाक्षी थे। इसलिए इन्होने अपने साथियो के साथ मिलकर एक छोटी प्रयोगशाला का निर्माण किया। प्रयोगशाला के लिए जिन वस्तुओ की आवश्यकता होती थी ये जेब खर्च से जुटाते रहे। उन दिनो ये कॉलिज के छात्र थे। इन्होने अपनी शिक्षा के साथ साथ लैटिन, फ्रासीसी भाषाओ का भी अध्ययन किया। जिस समय इन्होने बी० ए० की परीक्षा दी उस

समय तक बगला, सस्कृत, अगजी तथा लैटिन और फ्रांसीसी भाषा मे ये काफी ज्ञान प्राप्त कर चुके थे।

"प्रफुल्लचन्द्र राय पेट के रोगी थे। पेचिश से उनका पेट खराब हो गया था। ऐसी दशा मे भी ये अपने कार्य मे जुटे रहे। इन्होने अपने स्वास्थ्य की कभी परवाह नही की, क्योकि इनका कथन था कि जीवन मे कार्य करते रहने से ही मानव की उन्नति है।

"जिन दिनो ये प्रेसिडेंसी कॉलिज, कलकत्ता मे बी० ए० की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे कि सुप्रसिद्ध रसायन शास्त्री सर अलेक्जेण्डर पेडलर का इन पर गहरा प्रभाव पडा। सर अलेक्जेण्डर से प्रेरणा लेकर इन्होने रसायन शास्त्र मे काफी ज्ञान अर्जित किया। इसी बीच इन्होने गिलक्रिस्ट पुरस्कार प्रतियोगिता मे भाग लिया। उस प्रतियोगिता मे चार भाषाओ का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक था। राय को कई भाषाओ का पहले से ही ज्ञान था। अत इन्होने प्रतियोगिता जीतकर गिलक्रिस्ट पुरस्कार प्राप्त किया।

"पुरस्कार जीतने के बाद प्रफुल्लचन्द्र राय ने इग्लैंड जाने का निश्चय किया। उन दिनो उच्च शिक्षा के लिए इग्लैंड जाना पडता था। घर की दशा अच्छी न थी। फिर भी इनके पिता ने इन्हे इग्लैंड जाकर शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दे दी। किसी तरह धन जुटाया और उन्होने अपने होनहार पुत्र को सितम्बर १८८२ ई० को इग्लैंड भेज दिया।"

"इग्लैंड जाकर ये कौन से विश्वविद्यालय मे प्रविष्ट हुए?" दूसरे छात्र ने प्रश्न किया।

"एडिनबरा विश्वविद्यालय मे," अध्यापक महोदय ने आगे बताया—"वह विश्वविद्यालय विज्ञान की शिक्षा के लिए मशहूर था। उसी विश्वविद्यालय मे रसायन विज्ञान के प्रसिद्ध प्राध्यापक

अलेक्जेण्डर क्रमब्र।उन राय से अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने इन्हे हर प्रकार की सहूलियतें दी। इस बीच इन्हें जर्मन भाषा का भी सुचारु रूप से ज्ञान हो गया। और इन्होने रसायन, भौतिकी, वनस्पति एव जन्तु विज्ञान मे अच्छा खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

"एडिनबरा विश्वविद्यालय की रसायन प्रयोगशाला मे इन्होने अनुसधान कार्य परिश्रम से किया। इनके शोधकाय से प्रभावित होकर इन्हे डी० एस० सी० की उपाधि मिली। इनके उस शोध ग्रथ का नाम था 'कच्ची धातु का विश्लेषण।' शोध ग्रथ के प्रकाशित होते ही प्रफुल्लचन्द्र राय की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई।"

"इसके बाद इनका दूसरा शोधपत्र कब प्रकाशित हुआ और वह किस विषय से सम्बन्धित था?" छात्र ने पूछा।

अध्यापक महोदय ने उसकी ओर देख उत्तर दिया—"सन १८६६ मे इनका एक और शोधपत्र प्रकाशित हुआ। वह मरक्यूरस नाइट्राइट को स्थायी और क्रिस्टल रूप मे बनाने के ढग से सम्बन्धित था। उस शोध पत्र मे मर्करी पर तनुनाइट्रिक अम्ल की क्रिया द्वारा मरक्यूरस नाइट्राइट के पीले रग के रवो को प्राप्त करने का वणन किया गया था। इससे राय को विश्वव्यापी प्रसिद्धि मिली। विदेशो के कई वैज्ञानिक लेखको ने अपनी अपनी पुस्तको मे प्रफुल्लचन्द्र राय का विस्तारपूवक वणन किया। उन्होने यहाँ तक लिखा कि भारतीय रसायनज्ञ प्रफुल्लचन्द्र राय ने नाइट्राइटस पर अनेक लाभदायक खोजें करके विज्ञान को एक अद्भुत चीज़ प्रदान की है। एच० ई० आर्मस्ट्राग ने तो इनकी भूरि भूरि प्रशसा की थी और उन्होने इन्हे 'नाइट्राइस के स्वामी' की उपाधि दी थी।

"छ वष बाद प्रफुल्लचन्द्र राय विदेश से स्वदेश लौटे। भारत

मे उन दिनो अंग्रेजो का शासन था। भारतीयो को वे हेठी निगाह से देखा करते थे। यहाँ तक कि किसी भी उच्च पद के लिए उन्ही लोगो को रखा जाता था जो इनके समर्थक होते थे। भारत आकर प्रफुल्लचन्द्र राय के सामने नौकरी की समस्या आ खडी हुई। हालांकि डा० क्रमब्राउन ने इन्हे बहुत अच्छा प्रमाण पत्र बनाकर दिया था। कई बडे बडे लोगो ने भी इन्हे सिफारिशी पत्र दिये थे लेकिन उसका कोई विशेष प्रभाव नही पडा। उसी बीच इन्होने एक लेख लिखा था 'गदर से पूर्व और बाद का भारत'। यह लेख जब प्रकाशित हुआ तो अंग्रेजो मे तहलका-सा मच गया था क्योकि इस लेख मे ब्रिटिश हुकूमत की डटकर आलोचना की गई थी। इस लेख से इन्हे नौकरी मिलने मे और भी कठिनाई उत्पन्न हो गई थी।

"उस समय जब ये भारत लौटे थे तो इनके सामने अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो चुकी थी। ब्रिटिश सरकार से इन्हे घृणा हो गई। इसीलिए स्वदेश आते ही इन्होने कोट-पैंट त्याग कर धोती-कुरता पहनना आरम्भ कर दिया।

"जब इन्हे कही भी नौकरी न मिली तो जगदीशचन्द्र बसु के साथ रहकर अपना कार्य करते रहे। सन् १८८९ मे इन्हे प्रेसिडेंसी कॉलिज के रसायन विभाग मे प्राध्यापक का स्थान मिला। लेकिन एक अंग्रेज प्राध्यापक की तुलना मे अपना बहुत कम वेतन देखकर इन्हे बहुत बुरा लगा। फिर भी अनेक प्रयोग करने के लिए इन्होने कॉलिज की नौकरी नही छोडी।

"धीरे-धीरे इन्होने अमोनिया, ज़िक, केडामियम, कैल्शियम, स्ट्रांसियम, बोरियम व मैगनीशियम आदि धातुओ के नाइट्राइट्स के सम्बन्ध मे अनेक महत्वपूर्ण शोध काय किये। इतना ही नही, इन्होने अर्गेनोमेटेलिक यौगिको—गन्धक, पारा, प्लेटिनम आदि से बनने वाले अम्लो के यौगिको का विशेष रूप से अध्ययन किया।

"आचार्य जी का सामाजिक क्षेत्र भी कम नहीं रहा। इन्होंने भारत की आजादी की लडाई मे खुले रूप से तो भाग नही लिया लेकिन, भारत की स्वतन्त्रता के लिए सब कुछ करते रहे। सन् १६२१ मे जब बगाल मे अकाल पडा, उस समय आचार्य जी ने गाँव गाँव मे जाकर लोगो की सहायता की और धन आदि एकत्र करके निधनो को बाटा। अग्रेज सरकार ने इन्हे सम्मानित किया था, फिर भी इन्होंने अपने देश की भलाई के लिए सदव काय किया। ये किसी लालच का शिकार कभी नहीं हुए।"

"गुरुजी ! इन्होने 'बगाल कैमिकल एण्ड फार्मेस्यूटिकल वक्स लि०' की भी तो स्थापना की थी ?"

"हाँ, यह बात सन् १६०१ की है। इन्हे कई अच्छे सह योगी मिले तो इन्होने पचास हजार की राशि से 'बगाल कमिकल्स' की स्थापना की। आज भी इस कारखाने मे देशी-विदेशी दवाइयाँ और शृगार प्रसाधन तयार किये जाते हैं। इसी तरह उन्नति करते हुए इन्होने सौदेपुर मे गन्धक का तेजाब बनाने का कारखाना स्थापित किया। साथ ही अन्य कई कारखानो की स्थापना करने का श्रेय राय जी को है।

"सन् १६३१ मे 'सकट निवारण समिति' का गठन हुआ। उसका अध्यक्ष डा० राय को ही बनाया गया। इसी वष 'इडियन कैमिकल सोसायटी' ने, जिसकी स्थापना १६२४ ई० मे हुई थी, आचाय जी के अथक परिश्रम विज्ञान व समाज सेवा से प्रभावित होकर ७० वष की आयु मे अभिनन्दन किया।

"डा० राय के ग्रथ 'हिस्ट्री आफ कमिस्ट्री इन एन्सियेंट एण्ड मेडिवल इडिया' का प्रकाशन इडियन केमिकल सोसायटी ने सन् १६५६ मे किया।"

"ब्रिटिश सरकार ने भी तो इन्हे उपाधियाँ देकर सम्मानित किया था ?" एक छात्र ने कहा।

अध्यापक महोदय बोले—"हाँ, यह बात १९११की है। ब्रिटिश सरकार ने इन्हे सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया था और सन् १९१९ मे इन्हे 'सर' की उपाधि प्रदान की गई।

"इन्होने शिक्षा, साहित्य सेवा, विज्ञान, स्वतन्त्रता, समाज कल्याण तथा उद्योगो के क्षेत्र मे सराहनीय कार्य करके भारतीय विज्ञान के इतिहास मे अपना नाम उज्ज्वल किया है। वास्तव मे आचाय जी आजीवन अविवाहित रहे। इन्हे न धन जुटाने से मोह रहा और न इनमे कभी जात-पाँत का भेद भाव रहा। सादगी से इन्होने अपना जीवन व्यतीत किया।

"और एक दिन सन् १९४४ मे इस महान पुरुष का देहावसान हो गया। उस समय उनकी आयु तिरासी वर्ष की थी। आचार्य जी आज हमारे बीच नही है लेकिन उनके कार्य आज भी हमें उनकी याद दिलाते है। जब तक दुनिया है उनका नाम सदैव स्मरण होता रहेगा।"

श्रीनिवास रामानुजम
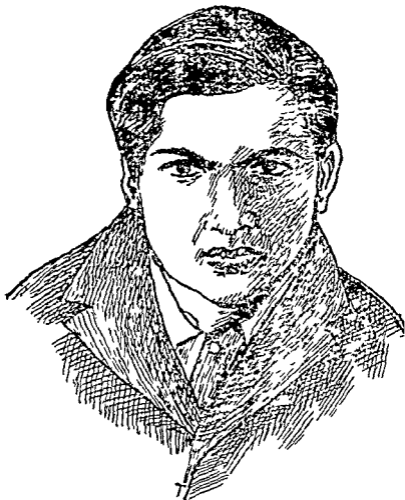
"अल्प आयु मे ही यदि महान् व्यक्ति चल बसे तो उसका दु ख असहनीय होता है। उसके स्थान की पूर्ति का होना तो

अत्यन्त कठिन हो जाता है और फिर ऐसे व्यक्ति के लिए जिसने अपनी बुद्धि से विश्व को चमत्कृत कर दिया था। वे यही महान् सपूत हैं, भारत माँ के श्रीनिवास रामानुजम जिन्होने भारत भू पर जन्म लेकर विश्व भर मे अपना नाम रोशन किया।

"क्या तुम बता सकते हो कि श्रीनिवास रामानुजम का जन्म कब, कहाँ और किसके घर हुआ था ?"

एक छात्र ने चित्र की ओर देखा फिर गुरुजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए बोला, "श्रीनिवास रामानुजम का जन्म अपने नाना के घर २२ दिसम्बर सन् १८८७ मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीनिवास आयगर था। वे मद्रास प्रान्त के कुम्भकोणम् स्थान पर एक वस्त्र विक्रेता के यहाँ नौकरी करते थे। अत्यधिक निधन होने के कारण वे अपने घर का खर्च भी सुचारु रूप से न चला पाते थे। फिर भी उन्होने अपनी प्रतिष्ठा का सदैव ध्यान रखा। गरीब होते हुए भी किसी के सामने सिर नही झुकाया। वे कट्टर ब्राह्मण थे। अत वे ऐसी सब बातो से दूर रहते थे जो उनके धर्म मे बाधक होती थी।"

"फिर तो तुम यह भी बता सकते हो, इनकी शिक्षा का प्रबन्ध कैसे हुआ ?"

"इनके पिता को कम वेतन मिलता था। जिससे अपने पुत्र को शिक्षा दिलाना उनके लिए कठिन था। फिर भी उन्होने अनेक परिस्थितियो का सामना करते हुए किसी तरह रामानुजम को दसवी तक शिक्षा दिलाई। रामानुजम पढने मे कुशल थे। अत्यन्त प्रतिभाशाली छात्र होने के कारण इन्हे छात्रवृत्ति भी मिलने लगी।

"जब ये ग्यारहवी कक्षा मे आये तो गणित से इन्हे अधिक

लगाव हो गया। हर समय ये गणित के विषय मे ही नाना प्रकार की बातें सोचने लगे। उसमे ये इतने उलझ गये कि इण्टरमीडियेट की परीक्षा मे इन्हे असफलता मिली। आखिर जो छात्रवृत्ति इन्हे मिलती थी वह भी बन्द हो गई। इन्होने भरसक प्रयत्न किया कि किसी प्रकार इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण कर लें, किन्तु भाग्य ने साथ न दिया और निराश होकर इन्होने पढाई छोड दी।

"सन् १६०६ मे इनकी शादी हो गई। विवाह के बाद ये और भी उलझन मे फँस गये। तीन-चार वर्ष नौकरी की तलाश मे घूमते रहे। लेकिन उन्हे कही भी नौकरी न मिली।"

"फिर तो इनके सामने और भी कठिनाइयाँ आ खडी हुई होगी ?" अध्यापक महोदय ने पूछा।

एक छात्र जो अभी तक कुछ सोच रहा था एकाएक बोला—"इसके बारे मे मैं बताता हूँ। जब नौकरी तलाश करते हुए ये निराश हो गये तो एक दिन भाग्य ने इनका कुछ साथ दिया। अपनी विशेषता के बलबूते पर इन्होने जो चाहा वह तो न हो सका। हाँ, मद्रास पत्तन प्रबन्ध समिति के कार्यालय मे इन्हें एक क्लर्क की नौकरी अवश्य मिल गई। वहाँ इन्हे पच्चीस रुपये माहवार वेतन मिलता था। ऐसी नौकरी करना इनकी इच्छा के विरुद्ध था। लेकिन मजबूरी की दशा मे ये और कर भी क्या सकते थे।

"उस कार्यालय मे इनके भाग्य ने कुछ समय बाद इनका कुछ साथ दिया। समिति के अध्यक्ष स्वय गणित मे रुचि रखते थे। जब उन्हे रामानुजम के विषय मे मालूम हुआ तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्हे कार्यालय के काम से मुक्ति दिला कर गणित मे शोध कार्य करते रहने की छूट दे दी। इससे रामानुजम का उत्साह और बढ गया और इन्होने अपना समस्त समय गणित मे शोध

काय मे लगाना आरम्भ कर दिया।

"समय बदलता गया। श्रीनिवास रामानुजम अपने कार्य मे इतने खो गये कि उन्हे कोई सुधबुध न रही। एक दिन इनके गणित शोध काय की हवा मद्रास विश्वविद्यालय मे फैल गई। इनके कार्य से प्रभावित होकर मद्रास विश्वविद्यालय ने इन्हे ७५ रुपये मासिक की छात्रवृत्ति देनी आरम्भ कर दी।

"चारो ओर इनकी ख्याति बढती जा रही थी। इसी बीच ब्रिटेन मे भी इनकी चर्चा होने लगी। इनके शोध काय से सब इतने प्रभावित हुए कि रामानुजम सब विद्वानो के दिलो पर छा गये।

"ये ब्रिटेन भी तो गये थे ?" एक अन्य छात्र ने पूछा।

तभी अध्यापक महोदय ने उत्तर दिया--"उन दिनो जब इनकी चर्चा ब्रिटेन मे जोरो पर थी, वहाँ के प्रोफेसर हार्डी इनसे अत्यधिक प्रभावित हुए। प्रोफेसर हार्डी ने जब इन्हे कैम्ब्रिज बुलाने के लिए लिखा तो रामानुजम को अपनी उन्नति का और भी उत्तम माग दिखाई देने लगा। इन्होने पत्र के उत्तर मे जो कुछ लिखा उसमे अपने कार्य के १२० प्रमेय व सूत्र भी लिख भेजे। इससे प्रोफेसर हार्डी और भी प्रभावित हुए।

"सन् १९१४ मे जब प्रोफेसर हार्डी के सहयोगी प्राध्यापक नेविली मद्रास विश्वविद्यालय आये तो रामानुजम के काय को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होने अपने खर्च पर इन्हे ब्रिटेन ले जाने को तैयार कर लिया। १७ माच सन् १९१४ को ये समुद्री माग द्वारा ब्रिटेन को रवाना हो गये।"

"ब्रिटेन मे रहकर तो इन्हे किसी कठिनाई का सामना न करना पडा होगा ?" एक छात्र ने पूछा।

"आर्थिक स्थिति तो ठीक हो गई लेकिन शारीरिक स्थिति बिगडने लगी।" अध्यापक महोदय ने कहा—"रामानुजम शाका-

हारी थे। मास, शराब आदि का प्रयोग न करते थे। इन सबसे इन्हें घृणा थी इसलिए इनकी इच्छानुसार इन्हें भोजन न मिल पाता था। अधिक परिश्रम करने के साथ भोजन ठीक से न मिलने के कारण ये बीमार रहने लगे। इनको डाक्टरो ने शाकाहारी न बने रहने की सलाह दी, किन्तु रामानुजम के विचारो मे तनिक भी परिवर्तन न आया। और जब इनका स्वास्थ्य अधिक खराब हो गया तो इन्हे अस्पताल मे भर्ती करवा दिया गया। वहाँ सुचारु रूप से इनका इलाज किया गया। परन्तु इनके स्वास्थ्य मे कोई प्रगति न हुई। आखिर बीमारी की दशा मे ही सन् १६१६ मे ये भारत लौट आये।

" यहाँ आने पर अस्वस्थ रहते हुए भी ये अपने कार्य मे जुटे रहे।

" और एक दिन अल्प आयु मे २६ अप्रल १६२० को ३३ वर्ष की अवस्था मे रामानुजम इस भरी दुनिया को छोड कर चले गये। इनकी मृत्यु से सारे भारत मे शोक छा गया था। विद्वानो को तो इनकी मृत्यु से अति दु ख हुआ था।

" इनकी स्मृति मे 'रामानुजम सस्थान' की स्थापना की गई। आज भी यह सस्था इनकी याद को ताजा करती है।"

चन्द्रशेखर वेंकटरामन

"क्या बता सकते हो, यह चित्र किसका है ?" अध्यापक महोदय ने प्रश्न किया।

चित्र को देखकर सभी विद्यार्थियो ने एक स्वर से उत्तर दिया—"यह चित्र भारत का गौरव बढाने वाले महान वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रामन का है।"

विद्यार्थियो का उत्तर सुन कर अध्यापक महोदय प्रसन्न हुए और बोले—"इन्होने हमारे देश का ही नही, समस्त एशिया का नाम विश्व मे रोशन किया है। विज्ञान के क्षेत्र मे ये प्रथम वैज्ञानिक हैं जिन्हें नोबेल पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया था।

"अब क्या तुम बता सकते हो, इनका जन्म कब, कहाँ और किनके यहा हुआ था ?"

एक छात्र ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं इनके विषय मे बताता हू।" और उसने बताना शुरू कर दिया—

"श्री वेंकट रामन का जन्म तमिलनाडु के प्रसिद्ध नगर त्रिचनापल्ली मे ७ नवम्बर सन् १८८८ ई० मे हुआ था। इनके पिता श्री चन्द्रशेखर अय्यर शिक्षित एव प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे से थे। वे एक विद्यालय मे अध्यापक थे। रामन की माता श्रीमती पार्वती अम्मल त्रिचनापल्ली के ही प्रतिष्ठित परिवार मे जन्मी थी। वह ब्राह्मण परिवार धर्म-निष्ठा और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था।"

"फिर तो माता-पिता का रामन पर विशेष प्रभाव पड़ा होगा ?" अध्यापक महोदय ने प्रश्न किया।

विद्यार्थी बोला, "हाँ गुरुजी ! इसमे कोई सन्देह नहीं। माता-पिता दोनो ही योग्य थे। पिता ने तो अध्यापन कार्य करने के साथ साथ भौतिक विज्ञान मे बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर ली थी। उन्हे विज्ञान मे ही नही, सगीत विद्या मे भी रुचि थी।

"कुछ दिनो बाद इनके पिता विशाखापट्टम् के हिन्दू कॉलिज

मे प्राध्यापक नियुक्त हो गये। रामन पर अपने पिता का विशेष रूप से प्रभाव पडा था। थोडी आयु मे ही रामन ने अंग्रेज़ी और भौतिक विज्ञान का ज्ञान अर्जित कर लिया था। कोई भी पुस्तक इन्होंने पढे बिना न छोडी, और इस प्रकार बारह वष की आयु मे ही इन्होने दसवी कक्षा अच्छे अक लेकर पास की। उस समय ये वाल्टेयर कॉलिज मे पढा करते थे। उसी कॉलिज से ये एफ० ए० की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए।

"एफ० ए० करने के बाद रामन को मद्रास के प्रेसिडेंसी कॉलिज मे प्रविष्ट कराया गया। अल्प आयु मे इतनी शिक्षा प्राप्त करना तथा इनके कार्यों से कॉलिज के सभी प्राध्यापक प्रभावित हुए। रामन ने बी० ए० मे विज्ञान का विषय चुना। और इसी विषय मे इन्होने गहन अध्ययन करना आरम्भ कर दिया।

" रामन ने विज्ञान के साथ-साथ गणित और यान्त्रिकी मे भी अच्छा खासा ज्ञान अर्जित कर लिया था। और अपने अथक परिश्रम से सन् १६०४ ई० मे इन्होने प्रथम श्रेणी से बी० ए० उत्तीर्ण किया। उस समय इनकी आयु सिफ सोलह वष की थी।

"अल्पायु मे बी० ए० प्रथम श्रेणी से उत्तीण करने के बाद इनकी चर्चा होने लगी। विश्वविद्यालय की ओर से इन्होने पदक और पुरस्कार जीते। इतना ही नही, भौतिक विज्ञान मे सबसे अधिक अक प्राप्त करने के लिए इन्हे स्वणपदक प्रदान किया गया।"

"क्या यही पर ही इन्होने अपनी शिक्षा समाप्त कर ली।" एक छात्र ने पूछा।

"नही, इन्होने उसी कॉलेज मे एम० ए० मे दाखिला ले लिया। और भौतिक विज्ञान ही विषय रखा। कॉलिज मे हर

प्रकार की इन्हे सुविधा थी। इन्होंने विज्ञान के साथ-साथ अन्य प्रकार के प्रयोग भी जारी रखे। हर बात को बहुत गहराई तक ये देखते और उस पर मनन किया करते थे। इससे भौतिकी के प्राध्यापक श्री जोस इनसे अधिक प्रभावित थे।

"एक बाद जब रामन का एक लेख प्रथम वार लन्दन की प्रसिद्ध पत्रिका मे प्रकाशित हुआ तो सभी को आश्चर्य हुआ। इससे इनकी प्रशसा के पुल बँधने लगे।

"सन् १९०७ मे रामन ने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की। और उसके बाद शोध कार्य करने के लिए सरकार की ओर से इन्हे छात्रवृत्ति मिलने लगी।

"रामन अपने कार्य मे लीन रहते थे। इनके शोध-कार्यों और लग्न ने इन्हे प्रख्यात करना आरम्भ कर दिया इस प्रकार छोटी-सी उम्र मे ही रामन ने कीर्ति प्राप्त कर ली थी।"

"क्या एम० ए० करने के बाद रामन ने विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करने का विचार नही किया?"

"किया तो था किन्तु स्वास्थ्य खराब होने के कारण ये विदेश न जा सके। इससे इन्हे निराशा मिली। उन्ही दिनो वित्त विभाग की प्रतियोगिता मे रामन ने भाग लिया। अपनी लगन और परिश्रम से यह परीक्षा इन्होने प्रथम श्रणी से पास की। इसका परिणाम यह हुआ कि इन्हें वित्त विभाग मे डिप्टी एकाउण्टण्ट जनरल के पद पर नियुक्त कर दिया गया। उस समय रामन की आयु बीस वर्ष की भी न हुई थी। इतनी छोटी आयु में उच्च पद विरलो को ही प्राप्त होता है। यह सब इनके अधिक परिश्रम और लगन का ही परिणाम था।

"उन्ही दिनो रामन का विवाह त्रिलोकसुन्दरी के साथ हुआ। त्रिलोकसुन्दरी के पिता श्रीकृष्ण स्वामी अय्यर उन दिनो समुद्री

चुगी विभाग के निरीक्षक थे ।

"अपने पद पर कार्य करते हुए रामन ने अपना शोधकार्य जारी रखा । अवकाश के दिनो मे भी ये अपने काय मे जुटे रहते थे। इस प्रकार अपने पद पर इन्होने दस वर्ष तक कार्य किया। उन दिनो ये कलकत्ता मे थे। इनके शोध-कार्य को देखते हुए इन्हे 'इण्डियन ऐसोसियेशन फार दि कल्टिवेशन आॅफ साइस' का सदस्य बना लिया गया ।

"कलकत्ता मे तीन वर्ष तक कार्य करते रहने के बाद इनका स्थानान्तरण रगून कर दिया गया। वहाँ भी इन्होने अपना शोध-जार्य जारी रखा। इतना ही नही, समाज सेवा के कार्य मे भी ये लगे रहे। कुछ समय रगून मे रहने के बाद इन्हे नागपुर भेज दिया गया। उन दिनो नागपुर मे महामारी फैली हुई थी। रामन ने लोगो की सेवा करने मे कोई कसर न उठा रखी। इनका कहना था कि मानव सेवा महान सेवा है।

"कुछ समय नागपुर मे बिताने के बाद सन् १९११ मे ये पुन कलकत्ता आ गये। इनकी कायकुशलता, सद्व्यवहार तथा समाज-सेवा अद्वितीय थी। इसके परिणामस्वरूप पदोन्नति करके इन्हें एकाउण्टेण्ट जनरल बना दिया गया। उस समय इनकी आयु तेईस वर्ष की थी।

"सन् १९११ से लेकर सन १९१७ तक श्री रामन ने डाक-तार विभाग के एकाउण्टेण्ट जनरल के पद पर काय किया। इस बीच उनका शोध-कार्य निरन्तर चलता रहा। सन १९१७ के जुलाई मास मे इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे विज्ञान के प्राध्यापक के स्थान पर काय करना आरम्भ कर दिया।

"और उसके बीच सन् १९२१ मे इग्लड मे ब्रिटिश साम्राज्य-गत विश्वविद्यालयो का सम्मेलन हुआ तब इन्हे प्रतिनिधि चुनकर भेजा गया। यह इनकी प्रथम विदेश-यात्रा थी। वहाँ जाकर

अपने भाषणों द्वारा इन्होने भारत का नाम उज्ज्वल किया। और जब ये भारत लौटे तो इन्हे डाक्टर ऑफ साइस' की उपाधि से विभूषित किया गया। यह उपाधि इन्हे कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से प्रदान की गई।

"विश्व भर मे इनकी ख्याति फैल चुकी थी। सन् १६२४ मे लदन की रायल सोसायटी ने इन्हे अपनी सोसायटी का सदस्य बना लिया। इसी बीच इन्हें भाषण देने के लिए कनाडा बुलाया गया। वहाँ से इग्लड, रूस, नार्वे, इटली, जर्मनी आदि की यात्रा करते हुए ये स्वदेश लौटे। इतना ही नही, इनकी प्रसिद्धि इतनी फैल गई कि वाशिंगटन, शिकागो व फिलाडेल्फिया विश्वविद्यालयो ने इन्हें आमंत्रित किया।

"विदेशो का भ्रमण कर भारत लौटने के बाद सन् १६२८ मे इन्होंने अपने सबसे महत्त्वपूर्ण अनुसधान 'रामन प्रभाव' की घोषणा की थी। प्रकाश के प्रकीर्णन से सम्बन्ध रखने वाले इस आविष्कार ने भारत म ही नही विश्व भर के विज्ञान क्षेत्र मे इन्हें उच्चकोटि के वैज्ञानिको मे ला खडा किया। इसी वर्ष इन्हें रोम 'मेट्यूसी' का पदक प्राप्त हुआ। और सन् १६२६ मे इन्हें 'नाइट' की उपाधि देकर सम्मानित किया गया। इतना ही नही, १६३० मे रायल सोसायटी लदन ने इन्हे 'ह्यू ज' तथा १६४६ मे फिलाडेलफिया के फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट ने इन्हें 'फ्रैंकलिन पदक' प्रदान किया। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयो ने इन्हें 'डाक्टर ऑफ साइस' की उपाधि देकर सम्मानित किया।

"भारत सरकार ने भी सन् १६२६ मे इन्हें 'सर' की उपाधि प्रदान की।

"श्री रामन ने अपने अनुसधान कार्य मे कई चमत्कारिक कार्य किये। समुद्र जल के नीले रंग के बारे में अनुसधान करने का कार्य भी इन्होने ही किया था। आज भी इनके अनुसधान की

'रामन रेखाए' रामन चित्रपट के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार भौतिक विज्ञान मे नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले श्री रामन प्रथम भारतीय हैं।

"जब भारत को स्वतन्त्रता मिली तब सन् १६४८ मे इन्हें विज्ञान साधना और महान् सेवाओ के लिए 'राष्ट्रीय आचार्य' की उपाधि देकर सम्मानित किया गया। और इस प्रकार सन् १६५४ मे भारत के राष्ट्रपति की ओर से इन्हें 'भ रत रत्न' की सर्वोच्च उपाधि से अलकृत किया गया।

"श्री रामन शान्ति के उपासक और निष्ठावान व्यक्ति होने के साथ-साथ महान् वैज्ञानिक के नाम से विश्व भर मे प्रसिद्ध हुए। इनसे प्रभावित होकर सन् १६५८ मे सोवियत सघ ने इन्हें 'लेनिन शान्ति पुरस्कार' प्रदान किया। मृत्यु पर्यन्त इन्होंने विज्ञान की जो सेवा की वह अविस्मरणीय रहेगी।"

प्रोफेसर बीरबल साहनी

"आइए, अब मैं आपको इस चित्र के विषय मे बताता हू—" अध्यापक महोदय ने चित्र को सम्बोधित करते हुए बच्चों

की ओर देखा। बच्चो ने चित्र को ध्यान से देखा। अध्यापक महोदय ने बच्चो से प्रश्न किया, "क्या तुम बता सकते हो, यह चित्र किसका है ?"

एक छात्र, जो चित्र को ध्यान से देख रहा था, बोला, "मैं बता सकता हूँ। यह चित्र प्रोफेसर बीरबल साहनी का है। ये एक ऐसे वैज्ञानिक है जिन्होने वनस्पति विज्ञान मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इतना ही नही, प्राचीन भारत मे सिक्के बनाने के ढग का उल्लेख इन्होंने ही किया था। अपने अथक परिश्रम और लगन से इन्होने अनुसधान करके जो काय किया उस पर हमारे देश को गर्व है।"

"बता सकते हो, इस महान वैज्ञानिक का जन्म कहाँ और कब हुआ था ?" अध्यापक महोदय ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न का उत्तर जब कोई छात्र न दे सका तो अध्यापक महोदय ने स्वय बताना शुरू किया—"लो, तो मैं बताता हूँ कि साहनी का जन्म कब और कहाँ हुआ।

"सन् १८९१ की बात है। उन दिनो भारत पर ब्रिटिश हुकूमत थी। अग्रेजो के शासन काल मे इसी वर्ष १४ नवम्बर को प्रोफेसर साहनी का जन्म पश्चिम पजाब के शाहपुर जिले के भेरा नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम लाला रुचीराम साहनी था। वे राजकीय विद्यालय, लाहौर मे रसायन विज्ञान के प्रोफेसर थे।

"बाल्यावस्था मे प्रोफेसर साहनी को प्रकृति से अधिक प्रेम था। हमेशा प्रकृति की बनाई हर वस्तु पर वे सोचा करते थे। इनके पिता स्वय रसायन विज्ञान के प्रोफेसर थे। उनका भी इन पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था। बचपन मे ही इन्होने अनेक वस्तुओ पर मनन करना शुरू किया तो इनके पिता को आभास होने लगा कि उनका पुत्र अवश्य महान् वैज्ञानिक बनेगा। इसी

के फलस्वरूप उन्होने अपने पुत्र की इच्छाओ की ओर विशेष ध्यान देना आरम्भ कर दिया। बीरबल साहनी ने पेड-पौधो का अध्ययन करना शुरू कर दिया। साथ ही उन्होने सीप, घोंघे एकत्र कर इन पर भी मनन किया। इस प्रकार इन्हे एक नई दिशा का ज्ञान मिलने लगा।

"स्कूल, कॉलेज की शिक्षा समाप्त कर बीरबल साहनी पजाब विश्वविद्यालय मे प्रविष्ट हुए और वही से उन्होने विज्ञान के स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उस समय इनकी आयु बीस वर्ष की थी।

"स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद प्रोफेसर साहनी को विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ। इन्होने इमानुअल कॉलेज कम्ब्रिज मे प्रविष्ट होकर प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन आरम्भ कर दिया। उसके अनुसधान मे इन्होने रात दिन एक कर दिया और प्रगति की ओर अग्रसर होने लगे। वहाँ कालेज के विश्व-विख्यात वनस्पतिशास्त्र-वेत्ता सर अलबर्ट सेवाड के सम्पर्क मे रहकर इन्होने अनुसधान कार्य किया। और उसी कॉलिज से इन्होने 'ट्राइपास' की परीक्षा अच्छे अक प्राप्त करके पास की।

"सर अलबर्ट सेवाड से इनका गुरु शिष्य जैसा सम्बन्ध था। वे इनसे अत्यधिक स्नेह करते थे। उनकी सदव यही धारणा बनी रहती थी कि साहनी विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक बनें। वास्तव मे साहनी ने आगे चल कर उनकी भावना को पूर्ण कर दिखाया।

"उन दिनो वहा 'सुडवरी हार्डीमान पुरस्कार' की घोषणा की गई थी। वह पुरस्कार योग्य व्यक्ति को दिया जाता था। प्रोफेसर साहनी ने सर्वप्रथम उस पुरस्कार को प्राप्त कर भारत का नाम रोशन किया। इससे साहनी की कीर्ति दूर दूर तक फैलने लगी।

"इसी प्रकार अपनी योग्यता को बढाते हुए साहनी ने लदन

विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० किया। सन् १९१९ मे इन्हे डाक्टरेट की उपाधि मिली।"

"प्रोफेसर साहनी को म्यूजिक का भी तो शौक था?" एक छात्र ने प्रश्न किया।

अध्यापक महोदय ने उत्तर दिया—"तुम ठीक कहते हो। प्रोफेसर साहनी जहाँ अपने क्षेत्र म अग्रणी थे वहाँ सगीत से भी इन्हे अधिक लगाव था। इन्होने सगीत का अध्ययन किया। जब कभी ये थकान महसूस करते तो सगीत से अपना मन बहला लिया करते थे।

"एकमोइल का अध्ययन करके प्रोफेसर साहनी ने जिम्नोस्पर्म को दो भागो मे विभक्त किया। इन्होने यह प्रमाणित कर दिखाया कि स्टाकोस्पर्म व फाइलोस्पर्म ये दोनो जिम्नोस्पर्म के दो भाग है। ऐसा प्रमाणित करके इन्होने अपनी बुद्धि का अद्भुत परिचय दिया।"

"प्रोफेसर साहनी विदेश से स्वदेश कब लौट कर आये?"

"सन् १९२० मे। भारत आकर प्रोफेसर साहनी को सर्वप्रथम वाराणसी के विश्वविद्यालय मे वनस्पति विज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त किया गया। उसके बाद कुछ समय तक पजाब विश्वविद्यालय मे भी इसी स्थान पर इन्होने कार्य किया। सन् १९२१ मे इन्होने लखनऊ के विश्वविद्यालय मे वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर के स्थान पर कार्य किया। सन् १९२३ मे ये उसी विश्वविद्यालय मे विज्ञान विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।"

"प्रोफेसर साहब की शादी कब और किसके साथ हुई थी?" एक छात्र ने पूछा।

"ओह, यह तो बताना ही भूल गया।" अध्यापक ने तुरत कहा—"प्रोफेसर साहनी जब विदेश से लौटे तभी इनका विवाह योग्य सुशिक्षित सावित्री से हुआ। सावित्री पजाब के प्रतिष्ठित

व्यक्ति रायबहादुर सुन्दरदास सूरी की पुत्री थी। इन्होंने अपने पति का हर तरह से साथ दिया। उससे प्रोफेसर साहब अति प्रसन्न थे।

" प्रोफेसर साहनी ने वनस्पति विज्ञान मे अनुसधान करके विज्ञान-जगत को नई चीज प्रदान की। इन्होने हर प्रान्त मे जगह-जगह अनुसधान करके पेण्टाक्सिली नामक एक और नये जिम्नोस्पर्म का पता लगाया। इस प्रकार इन्होने अपने अनुसधान काय मे विशेष सफलता प्राप्त की।

" कई सस्थाओ के सदस्य, अध्यक्ष उपाध्यक्ष के रूप मे काम करके इन्होने अपनी योग्यता, कुशलता का अद्भुत परिचय दिया। जियोलॉजिकल सोसायटी ऑफ लन्दन, अन्तर्राष्ट्रीय बोटेनिक्ल काग्रेस, नशनल एकादमी ऑफ साइसेज, भारतीय विज्ञान काग्रेस, भारतीय वनस्पति विज्ञान सस्था तथा अमेरिकन एकादमी आफ आर्ट्स एण्ड साइसेज आदि उन सस्थाओ मे प्रमुख है।

" आपको पटना और इलाहाबाद विश्वविद्यालयो की ओर से डी० एस सी० की उपाधि से भी विभूषित किया गया। इस प्रकार सी० आर० रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार तथा बारक्ले पदक भी आपको प्राप्त हुआ।

" वनस्पति विज्ञान-क्षेत्र मे अनेक चमत्कारिक कार्य करते रहने पर प्रोफेसर साहनी विश्व भर मे प्रसिद्ध हो चुके थे। इन्होने अपने क्षेत्र मे ही काय नही किया वरन् सामाजिक क्षेत्र मे भी इन्होने पूरी लगन व निष्ठा से कार्य किया। जितना ये पुरा वनस्पति विज्ञान मे अनुसधान के कार्य को उच्च स्तर पर देखना चाहते थे उतना ही भारत के सामाजिक व देशभक्ति कार्य को भी।

" प्रोफेसर साहनी ने लखनऊ मे बीरबल साहनी इस्टीट्यूट ऑफ पालियो बॉटनी' की स्थापना की। इस सस्था के निए

इन्होने अपनी समस्त सम्पत्ति लगा दी। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती साहनी इसकी अध्यक्ष निर्वाचित हुई। उन दिनो भारत के प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने ३ अप्रल सन् १९४९ को इस सस्था का उद्‌घाटन किया था।

" पुरा-वनस्पति विज्ञान के महान् वैज्ञानिक प्रोफेसर साहनी अपनी सस्था की अधिक समय तक सेवा न कर सके। ४ अप्रैल १९४९ को अचानक इन्हे दिल का दौरा पडा। इन्हे बचाने के समस्त उपाय किये गये, किन्तु सभी असफल रहे। और १० अप्रैल को ये सदैव के लिए ससार से विदा हो गये।

" प्रोफेसर बीरबल साहनी की मृत्यु से देश को गहरा आघात पहुँचा, किन्तु कोई कर भी क्या सकता था। आज वे हमारे मध्य नही हैं लेकिन उनके अथक परिश्रम के कार्य आज भी हमें उनकी याद दिलाते हैं। "

डा० मेघनाद साह

"विज्ञान का कौन ऐसा छात्र होगा जो डा० मेघनाद साह के नाम से परिचित न हो। यह उन्हीं महान् वज्ञानिक का चि`है

अध्यापक महोदय के पूछने पर एक छात्र ने तुरत कहा—"मैं उसके विषय मे बता सकता हूँ।"

"बताइए।"

आज्ञा पाकर छात्र ने कहना शुरू किया—"तारो के सरचना तत्वो व उनके ताप्पमान की खोज।"

छात्र का उत्तर सही था। अत अध्यापक महोदय बोले—"फिर तो तुम इनके विषय मे अच्छी तरह जानते होगे।"

अध्यापक महोदय के प्रश्न को सुनकर छात्र बोला—"अधिक नही सिर्फ कुछ एक विशेष बातें जानता हूँ।"

"तो बताओ इनका जन्म कब और कहाँ हुआ था?"

"इनका जन्म ६ अक्टूबर सन् १८९३ ई० को ढाका के एक गाँव मे हुआ था। जो अब बंगला देश मे है। मेघनाद साह के पिता का नाम श्री जगन्नाथ साह था। वे वैश्य थे। अत दूकानदारी किया करते थे।"

"लीजिए, आगे मैं बताता हूँ।" अध्यापक महोदय बोले—"घराना निर्धन होने के कारण वे घर का खर्च कठिनाई से चला पाते थे। इसलिए मेघनाद को प्रारम्भिक शिक्षा दिलाने मे उनके सामने कठिनाई उत्पन्न हुई। दूसरे गाव मे कोई ऐसा विद्यालय भी न था। एक मिडिल स्कूल था वह भी गाँव से सात-आठ मील दूर। श्री जगन्नाथ साह चाहते थे किसी तरह थोडा-बहुत पढा लिखाकर अपने पुत्र को वे दूकानदारी के धंधे मे लगा लें। यही सोचकर उन्होने उन्हें मिडिल स्कूल मे भर्ती करवा दिया। प्रवेश दिलाने मे भी उन्हे कई कठिनाइयो का सामना करना पडा था।

"जब मेघनाद ने प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर ली तो इनके

पिता ने इन्हें पढाई से हटाकर अपने धंधे मे लगा लिया। मेघनाद चाहता था कि आगे भी शिक्षा ग्रहण करे। लेकिन पिता को ये कुछ कह न सके। दूकानदारी का धधा ये कर न सके। हर वक्त पढाई की ओर ही इनका रुझान रहता था। आखिर इनके पिता ने इन्हे आगे शिक्षा दिलाना स्वीकार कर लिया। लेकिन एक विकट समस्या उनके सामने आ खडी हुई। उसका मुख्य कारण यह था कि आसपास कोई हाई स्कूल न होने के कारण मेघनाद को ढाका भेजना पडता था। इसके लिए वे तैयार न थे।

"मेघनाद को जब यह पता लगा उसे निराशा हुई। फिर भी उसने साहस से काम लिया और अपने पिता को स्वय ढाका भेजने के लिए विवश कर दिया। उस काय मे सबसे अधिक सहयोग यदि इन्हे मिला तो वह था इनके बडे भाई का। वे चाहते थ कि अपने छोटे भाई की भावना को प्रोत्साहित करें। ताकि उसके जीवन मे उन्नति का मार्ग उसे मिल सके।

"सन १६०५ मे मेघनाद साह ढाका पहुँचे और इन्होने राज कीय हाई स्कूल मे दाखिला ले लिया। वहाँ सबसे अधिक सहयोग इन्हे डॉक्टर श्री अनन्त कुमार दास का मिला। डॉ० दास मेघनाद के बडे भाई के परम मित्र थे। इनके भाई ने ढाका मे रहने का प्रबध डॉ० दास के पास ही कर दिया था।

"डॉ०दास मेघनाद से अधिक प्रभावित हुए। और उन्हें इनसे अत्यधिक स्नेह हो गया। यहाँ तक की घर से दूर रहकर मेघनाद को घर की याद न आई। यह सब डॉ० दास के स्नेह का ही परिणाम था।

"उन दिनो स्वतन्त्रता सग्राम की आग सुलग चुकी थी। मेघ नाद उसकी ओर प्रभावित हुए। अग्रेजो के अत्याचारो को देखकर इन्हें उनसे घृणा हो गई थी। अत ये सदैव अग्रेजो का निरादर करने की सोचा करते थे। एक बार तो इन्होने बगाल के

तत्कालीन गवर्नर फुलर के सत्कार का विद्यालय मे बहिष्कार किया। गवर्नर फुलर विद्यालय के किसी समारोह मे भाग लेने पहुँचे थे। इससे मेघनाद को हानि उठानी पडी। इनकी छात्रवृत्ति रोक दी गई। फिर भी मेघनाद ने कोई परवाह न की और निरन्तर अग्रेजो के विरुद्ध प्रचार करते रहे।

"सन् १९०९ मे इन्होने कलकत्ता विश्वविद्यालय की परीक्षा मे प्रथम स्थान प्राप्त किया।"

"श्री मेघनाद साह विद्यार्थी काल मे आचाय प्रफुल्लचन्द्र राय आदि के सम्पक मे भी तो रहे?" एक छात्र ने प्रश्न किया।

"यह उन दिनो की बात है जब इन्होने कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज मे प्रवेश किया। उन दिनो आचाय प्रफुल्लचन्द्र राय व श्री जगदीशचन्द्र बसु उस कॉलेज मे विज्ञान के प्राध्यापक थे। मेघनाद से वे काफी प्रभावित हुए और उन्होने इन्हे हर प्रकार की सहायता प्रदान की। फिर ता इन्होने अपने कार्य मे कोई कसर न उठा रखी। और वही से इन्होने बी० एस सी० तथा एम० एस सी० की डिग्रिया प्राप्त की।"

"इन्होने अनुसधान कार्य कब आरम्भ किया?" एक छात्र ने अध्यापक महोदय से पूछा।

अध्यापक महोदय ने उसकी ओर देखा और बोले—"उस समय जब कि सारे विश्व पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। वह प्रथम महायुद्ध का महान सकट था। मेघनाद साह ने उन्ही दिनो अपना अनुसधान कार्य आरम्भ किया। इन्होने पहले भौतिक अनुसधान का कार्य किया। अपने अध्ययन और परिश्रम से इन्होने विकिरण के क्वाटम तथा आइन्सटाइन के सिद्धान्त का पता लगाया। इतना ही नही, इन्होने आइन्सटाइन के सभी शोध ग्रथा का अध्ययन करके उनका अनुवाद भी किया।

" इसी प्रकार इनका अध्ययन जारी रहा।

"अपने अध्ययन काल में इन्हें कुमारी एग्नेस क्लाक द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तकें तारा-भौतिकी पर प्राप्त हुई। साह ने उन पुस्तको का अध्ययन किया। उन पुस्तको से इन्हें नई दिशा का भान हुआ। और इन्होंने अपने अध्ययन एव अनुसधान कार्य मे सफलता प्राप्त कर यह सिद्ध कर दिया कि प्रकाश का दबाव, विकिरण के क्वाटम सिद्धान्त को प्रभावित करता है।

" श्री साह ने अनेक शोध पत्र इस विषय पर लिखे जो अनेक वैज्ञानिक पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए। उससे श्री साह का नाम दूर-दूर तक फलने लगा। शोध पत्रो के आधार पर ही उन्हें डी० एस सी० की उपाधि से सम्मानित किया गया। उसके बाद उन्हे छात्रवृत्ति भी दी जाने लगी।

" लगन और मेहनत मानव को उन्नति के शिखर पर पहुँचाती है। इसमे कोई सन्देह नही है कि साह अपनी लगन और मेहनत के बलबूते पर ही हर काय मे जिसमे उन्होने ध्यान लगाया, सफलता प्राप्त करते रहे। सन् १६१६ मे इन्हे योरोप जाने का अवसर मिला। वहाँ जाकर उन्होने अपने अध्ययन एव अनुसधान काय को निरन्तर जारी रखा। इसी बीच बर्लिन के प्रसिद्ध वज्ञानिक श्री नर्स्ट से उनकी भेंट हुई। वे थर्मोडाइनेमिक्स के प्रकाण्ड पडित थे। इन्होने मेघनाद के कार्य को देखा तो अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होने अपने साथ कार्य करने का अवसर प्रदान कर दिया।

" मेघनाद को इस तरह काफी सहयोग मिला। श्री नर्स्ट के साथ काय करके उन्होंने काफी सफलता प्राप्त की। विदेशो मे अनुसधान मे कार्य के कारण इनकी कीर्ति फैल गई और

वैज्ञानिको मे इस तरह उन्होने उच्चकोटि का स्थान प्राप्त कर लिया।

"योरोप मे दो वर्ष रहने के बाद ये स्वदेश लौट आये। यहाँ आकर इन्हे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे भौतिकी के प्राध्यापक के स्थान पर नियुक्त कर दिया गया। वहाँ उन्होने अपना चमत्कारिक कार्य दिखाकर सभी को प्रभावित किया। और इन्होने अपने परिश्रम से 'इन्स्टीट्यूट फॉर न्यूक्लियर फिजिक्स' सस्था की स्थापना की। इस प्रकार उन्होने कई सस्थाओ की स्थापना की थी।

"मेघनाद साह ने प्रत्येक वैज्ञानिक सस्था को अपनी सेवाएँ प्रदान की थी। पन्द्रह वर्ष तक ये प्रयाग विश्वविद्यालय मे भी प्राध्यापक के रूप मे कार्य करते रहे। इसी प्रकार ये कलकत्ता मे प्रयोगशालाओ का गठन करते हुए अपने निर्माण काय में पन्द्रह वष तक सलग्न रहे।

"डॉ० साह ने विज्ञान जगत की जो सेवा की उसे भुलाया नही जा सकता। इन्होने तारकीय वर्ण क्रम के माध्यम से तापमान मालूम करने की क्रिया का ज्ञान देकर विज्ञान जगत को एक अदभुत उपहार भेंट किया। इतना ही नही, मुक्त इलेक्ट्रान गॅस से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी उन्होने ही विज्ञान को दिया।

"सन् १९५६ मे दिल्ली स्थित योजना आयोग के भवन मे विज्ञान की चर्चा हेतु एक गोष्ठी का आयोजन किया गया था। डॉ० साह को उसमे आमन्त्रित किया गया। जिस समय डॉ० साह योजना आयोग के भवन की ओर जा रहे थे कि अचानक हृदय-गति रुक जाने के कारण हमेशा के लिए वे ससार से विदा हो गये। विज्ञान जगत का एक महत्वपूण सितारा सदैव के लिए अस्त

हो गया।

"आज श्री साह हमारे बीच तो नहीं है लेकिन उन्होंने विज्ञान जगत की सेवा करके जो अनोखी भेंट विज्ञान को दी है वह सदैव इनकी याद दिलाती रहेगी।"

चित्र की ओर सकेत करते हुए अध्यापक महोदय ने प्रश्न
।—"क्या बता सकते हो, यह चित्र किसका है ?"

तुरत चित्र की ओर देख कई विद्यार्थियो ने हाथ खडा कर दिया। अध्यापक महोदय उन्हे देख प्रसन्न हुए और एक छात्र की ओर सकेत करते हुए बोले—"बताओ यह महान् वैज्ञानिक कौन हैं?"

'ये हैं भौतिकी विज्ञान के महान् वज्ञानिक श्री सत्येन्द्रनाथ बोस।" छात्र ने उत्तर दिया।

"फिर तो तुम यह भी बता सकते हो कि इन्होने विज्ञान-जगत मे कौन-सा आश्चयजनक काय किया?"

"क्यो नही गुरुजी!" छात्र ने तुरन्त कहा—"विकिरण से सम्बन्धित इन्होने अद्भुत कार्य किया है। इसी कार्य ने इन्हे उच्च कोटि के वैज्ञानिको की पक्ति मे ला खडा किया। विकिरण के कणो को प्लेक ने वैद्युत चुम्बकीय तरगो के फोटॉन की सज्ञा दी थी। लेकिन बोस ने विकिरण को पदाथ का साधारण कण स्वीकार किया। और प्लैंक के सूत्र के आधार पर इन्होने ऐसे कई कणो को पहचान लिया जिन पर बोस की साख्यिकी लागू होती है। उन कणों को बोसॉन की सज्ञा दी गई। उसी काय के लिए बोस को ख्याति मिली।"

"क्या बोस के जन्मस्थान आदि के विषय मे भी तुम कुछ बता सकते हो?" अध्यापक ने पूछा।

इस पर पहले छात्र ने कोई उत्तर नही दिया तो दूसरा छात्र तुरत बोला—"मैं बता सकता हू।"

"बताओ!" अध्यापक ने कहा।

"सत्येन्द्रनाथ बोस का जन्म १ जनवरी १८६४ को हुआ था। उन दिना इनके पिता सुरेन्द्रनाथ कलकत्ता के निवासी थे। बगाल की भूमि पर जन्म लेकर सत्येन्द्रनाथ बोस बडे हुए। बाल्यावस्था मे सत्येन्द्रनाथ बोस पर बकिमचन्द्र, स्वामी विवेकानन्द आदि का अदभुत प्रभाव पडा। भारत देश उन दिनों गुलाम

था। अंग्रेजो का शासन काल था और उस समय क्रान्ति की आग भडक रही थी। भारतवासी आजादी का नारा जगह-जगह बुलन्द कर रहे थे।

" जब बोस पर भी उन सब बातो का प्रभाव पडा तो इनके पिता चकित रह गये। एक दिन अनायास ही इनके पिता ने अपने पुत्र की जन्मपत्री एक ज्योतिषि को दिखाई। ज्योतिषि जन्मपत्री को देख प्रसन्न हुआ और उसने भविष्यवाणी कर दी, 'सत्येन्द्र एक दिन विश्व मे लोकप्रियता प्राप्त करेगा।'

" पिता ने जब यह सुना तो फूले न समाये। उन्होने अपने पुत्र की शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया। प्राथमिक शिक्षा के लिए सत्येन्द्र बोस को एक हिन्दू पाठशाला मे भेजा गया। वहाँ इन्होने अपनी बुद्धि का जो परिचय दिया उसे देखकर सभी अध्यापक इनसे स्नेह करने लगे। क्योंकि गणित मे सत्येन्द्रनाथ बोस ने सभी को आश्चर्यचकित कर दिया था। कोई विश्वास भी न कर सकता था कि छोटी उम्र का एक छात्र गणित मे इतनी विद्वत्ता दिखा सकता है।

प्रेसिडेन्सी कालिज में इन्होने अपनी उच्चशिक्षा प्राप्त करते हुए एक रिकार्ड कायम कर दिया। उन दिनो जगदीशचन्द्र बसु व प्रफुल्लचन्द्र राय उसी कालिज मे अध्यापक का काम कर रहे थे। बोस की योग्यता और मेहनत को देख वे प्रभावित हुए। उन्होंन इन्हे हर प्रकार की सुविधा प्रदान की। इसी प्रकार सन् १६१५ में इन्होने एम० एस सी० मे प्रथम स्थान प्राप्त किया।"

"उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद बोस ने क्या किया ?" अध्यापक का प्रश्न था।

विद्यार्थी न उत्तर दिया—"एम० एस-सी० करने के बाद बोस अनुसधान कार्य मे जुट गये। सन् १६१८ मे श्री आसुतोष मुखर्जी ने [illegible]

विश्वविद्यालय मे भौतिकी और गणित विभागो की स्थापना की थी। बोस से वे अत्यधिक प्रभावित थे। अत बोस को वहाँ *प्राध्यापक का स्थान मिल गया।* फिर *क्या* था, इन्होने अपनी लगन एव मेहनत से कार्य आरम्भ कर दिया। इनके कार्यों की सराहना दूर-दूर तक होने लगी।

" जब ढाका विश्वविद्यालय मे इनकी प्रशमा के पुल बंधे तो विश्वविद्यालय की ओर से इन्हे आमंत्रित किया गया। और सन् १९२१ मे सत्येन्द्रनाथ बोस कलकत्ता छोड ढाका चले गये। ढाका विश्वविद्यालय मे काय करते हुए इन्होने कई अनुसधान किये। शोध-काय करते हुए कई लेख लिखे जो विदेशो की प्रसिद्ध पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए। उनसे इन्हें और भी अधिक लोकप्रियता मिली।"

"ढाका विश्वविद्यालय मे कार्य करते हुए बोस विदेशो मे भी भ्रमण के लिए गये ?"

"हाँ, इनके सराहनीय काय से प्रसन्न होकर विश्वविद्यालय की ओर से इन्हें यूरोप जाने का मौका मिला। विदेश मे दो वष तक इन्होने प्रसिद्ध वैज्ञानिको के साथ काय किया। इस प्रकार बोस ने ढाका विश्वविद्यालय का नाम ऊँचा किया।

' डॉ॰बोस कई सस्थाओ के अध्यक्ष तथा सदस्य रहे हैं। सन् १९५६ मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से ये सेवामुक्त किये गये। उसके बाद विश्वभारती विश्वविद्यालय के ये उपकुलपति नियुक्त हुए। लदन की रायल सोसायटी ने सन् १९५८ मे इन्हे सभासद चुनकर इनका सम्मान किया। सन् १९५९ मे जब इन्हें राष्ट्रीय प्राध्यापक का सम्मानित स्थान दिया गया तब विश्वभारती के उपकुलपति का पद इन्हे छोडना पडा।

" देश का विभाजन सन् १९४७ मे हुआ। उससे डॉ॰ बोस को दु ख हुआ लेकिन ये कर भी क्या सकते थे। अपने कार्यों मे

ये इसी प्रकार लगे रहे। विज्ञान की सेवा करते हुए सन् १६१८ में इन्होंने 'बंग-विज्ञान-परिषद' की स्थापना की। आज भी वृद्धावस्था में डॉ० बोस विज्ञान की साधना में जुटे हैं। हम भगवान से प्रार्थना करते हैं वे दीर्घायु हों और इसी प्रकार विज्ञान की सेवा में लगे रहें।"

डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर
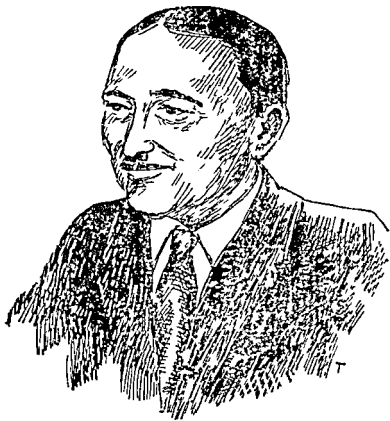
"अच्छा, तो अब बताओ, यह चित्र किस वैज्ञानिक का है?"

अध्यापक के प्रश्न करते ही विद्यार्थियो ने एकसाथ उत्तर दिया—"यह चित्र हमारे प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री शान्तिस्वरूप भटनागर का है।"

"फिर तो तुम इनके जीवन के विषय मे भी भली भाँति जानते होगे ?" अध्यापक महोदय ने पूछा।

सभी बच्चो ने महान् वैज्ञानिक के जीवन के विषय मे पढा व सुना था। अध्यापक महोदय ने एक विद्यार्थी की ओर सकेत किया और डॉ० भटनागर के जीवन के विषय मे बताने को कहा।

विद्यार्थी ने बताना आरम्भ किया—"डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर का जन्म २१ फरवरी १८९४ को भरा जिला शाहपुर मे हुआ था। इनके पिता श्री परमेश्वरी सहाय भटनागर साधारण परिवार के व्यक्ति थे। उसी समय जब डॉ० भटनागर की आयु आठ मास की थी इनके पिता का देहान्त हो गया। पिता के देहान्त के बाद शान्तिस्वरूप के परिवार की आर्थिक अवस्था और भी खराब हो गई। ये तीन भाई-बहन थे। डॉ० भटनागर सबसे छोटे थे। इनकी माता ने निर्धनता के दिन व्यतीत करते हुए भी अपने पुत्र को विद्यालय मे दाखिल करवा दिया। वह किसी तरह अपने बच्चो को योग्य बनाना चाहती थी। जैसे-तसे कर उसने शान्तिस्वरूप की पढाई का प्रबन्ध किया।

" भटनागर ने हाई स्कूल की परीक्षा लाहौर के 'दयालसिह हाई स्कूल' से उत्तीर्ण की। उस समय तक से अपने घर की स्थिति के विषय मे भली भाँति जान गये थे। माँ के दुख को ये सहन नही कर सकते थे। अत इन्होने अपने से छोटी कक्षाओ के छात्रो को पढाकर अपनी पढाई आदि का खर्च चलाया। स्कूल के अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक इनसे काफी प्रभावित थे। वे इनकी स्थिति को अच्छी तरह जानते थे। इसीलिए इनको छात्र-वृत्ति दी जाने लगी। इससे शान्तिस्वरूप को आर्थिक सहायता

प्राप्त हुई और इन्होंने अपनी शिक्षा को और आगे बढ़ाने का निर्णय कर लिया।

"प्रथम श्रेणी से हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्हें जो छात्रवृत्ति मिली उसकी सहायता से इन्होंने 'दयालसिंह कॉलिज' में दाखिला ले लिया। कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करते हुए इनका ध्यान साहित्य की ओर भी बढ़ गया। इनके मन के विचार नाटक व लेख आदि के रूप में प्रकट होने लगे। शायरी का भी इन्हें बेहद शौक था।

"सबसे पहले इन्होंने एक नाटक लिखा जिसका नाम 'करामाती' था। वह नाटक उर्दू भाषा में लिखा गया। उस नाटक ने इनका नाम साहित्यकारों की श्रेणी में जोड़ दिया। 'सरस्वती स्टेज सोसायटी' ने जब वह नाटक खेला तो हर तरफ उसकी प्रशंसा होने लगी। उसी नाटक के फलस्वरूप इन्हें सर्वोत्तम नाटक लेखन का 'मेडल' पुरस्कारस्वरूप भेंट किया गया। फिर क्या था। इन्होंने कई लेख, नाटक तथा गजल आदि लिख कर साहित्य को अनुपम चीजें भेंट दीं। इनकी रचनाएँ सभी प्रचलित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं।

"दयालसिंह हाई स्कूल' के प्रधानाध्यापक पहले से ही इनसे प्रभावित थे। जब उनकी पुत्री लाजवती बड़ी हुई तो उन्होंने उसके लिए शान्तिस्वरूप भटनागर को उसके वर योग्य उचित समझा। वे जानते थे आर्थिक स्थिति ठीक न होने पर भी भटनागर दिन-ब-दिन उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि एक दिन वह महान् व्यक्ति बनेगा। अतः उन्होंने शान्तिस्वरूप से अपनी पुत्री का विवाह करने का निश्चय कर लिया। इसमें इनकी माता जी को भी कोई आपत्ति न हुई, और सन् १९१५ में इनका विवाह लाजवती के साथ सम्पन्न हो गया।

"श्रीमती लाजवंत पति की भावना को समझने की सामर्थ्य रखती थी। वह योग्य गृहणी थी। उसने सदैव अपने पति को उनके कार्यों में प्रेरणा दी। इससे ये अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रसन्न रहा करते थे।

"दयालसिंह कॉलिज से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्हें विदेश जाने का अवसर मिला। कॉलिज व ट्रस्ट ने इन्हें यह अवसर प्रदान किया। सन् १९१९ में ये लंदन पहुँचे। इस बीच इन्होंने अमरीका का भी भ्रमण किया।

"लंदन में इन्होंने अपने अध्ययन कार्य को बड़ी शालीनता व मेहनत से किया। व्यर्थ की बातों में समय गँवाने की इनकी आदत प्रारम्भ में ही न थी। समय को ये बहुत मूल्यवान समझते थे। अतः लंदन में रह कर सन् १९२१ में इन्होंने लंदन विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की उपाधि प्राप्त की। अपने प्रयास और लगन से इन्होंने विदेश के वैज्ञानिकों में भी अपना स्थान बना लिया। इतना ही नहीं अवकाश के दिनों में बर्लिन के कैसर विलयम इंस्टीटयूट और पेरिस के सरबोन विश्वविद्यालय में भी कार्य किया।

"स्वदेश लौटने पर उन्हें काशी विश्वविद्यालय में रसायनशास्त्र के अध्यापक का स्थान मिल गया। कुछ समय वहीं कार्य करते रहे। उनका अनुसंधान कार्य निरन्तर चलता रहा। उसके बाद रसायन प्रयोगशालाओं के निदेशक बनकर लाहौर चले गये। वहां उन्होंने अनेक प्रकार के अनुसंधान कार्य किए। इन्होंने चुम्बकीय तुला का आविष्कार करके विज्ञान साहित्य में एक नवीन अध्याय का शुभारम्भ किया। इस पर उन्होंने शोध-ग्रंथ भी लिखा। फिर तो इनकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई।"

"इन्होंने और भी कई वस्तुओं का आविष्कार किया था?" अध्यापक महोदय ने प्रश्न किया।

विद्यार्थी ने उत्तर दिया—"इन्होंने कई ऐसी वस्तुओं का आविष्कार किया जिन्हें आज हम प्रयोग करते हैं। जिसमें ये मुख्य हैं—कपडा व वार्निश, विस्फोटक वर्तन, प्लास्टिक आदि। इनके इन आविष्कारों से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने इन्हें सन् १९३३ में ओ० बी० ई० की उपाधि से सम्मानित किया। इतना ही नहीं, भारत सरकार ने इन्हें 'पदम विभूषण' की उपाधि प्रदान की। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद, पटना, देहली, पंजाब आदि विश्वविद्यालय ने इन्हें अपनी-अपनी उपाधियाँ देकर सम्मानित किया। आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी ने भी इन्हें सम्मानित किया था।

"अपने अनुसंधान कार्य में इन्होंने और भी कई आविष्कार किये। मिट्टी का तेल स्वच्छ करने की क्रिया, बिनौनों के तेल से बैकेलाइट, गंधहीन मोम आदि यह सब उन्हीं की देन है।

"सन् १९४६ में पत्नी का निधन हो जाने से भटनागर के दिल को गहरा आघात लगा। इनके दो पुत्र, दो पुत्रियां थीं लेकिन डॉ० भटनागर के जीवन में नीरसता आ ही गई। पत्नी की मृत्यु से दिल टूट-सा गया। फिर भी अपने अनुसंधान कार्य में इन्होंने कोई कमी न आने दी थी। उस पत्नी की याद शायरी में ढलती चली गई।

"विज्ञान साहित्य की जितनी इन्होंने सेवा की, साहित्य क्षेत्र में भी ये पीछे न रहे। अनेक संस्थाओं के सदस्य, सभापति आदि बन कर उन्होंने अपनी योग्यता का अद्भुत प्रमाण दिया है।

"जीवन के अन्तिम क्षणों तक इन्होंने कार्य किया। एक दिन अचानक इन्हें दिल का दौरा पडा और १ जनवरी १९५५ को ये हमेशा के लिए संसार से विदा हो गये। इनके निधन से देश को अत्यधिक दुःख हुआ था।

" एक निधन परिवार मे पल कर अपने अथक परिश्रम, साहस और लगन से इन्होने जीवन के अन्तिम क्षणो तक विज्ञान की जो सेवा की उसे भुलाया नही जा सकता। आज डॉ० भटनागर तो हमारे बीच नही हैं लेकिन उनके आविष्कारो द्वारा प्रदान की गई वस्तुए सदैव उनको याद दिलाती रहेंगी।"

श्री पचानन महेश्वरी
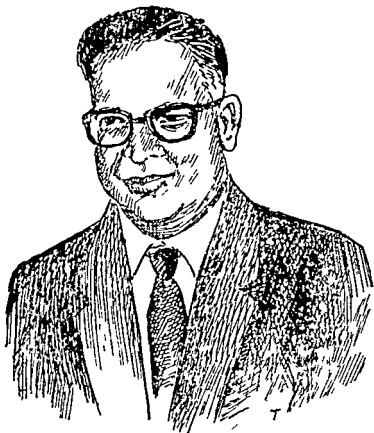
अध्यापक महोदय ने चित्र की ओर सकेत करते हुए कहा—"आंखो पर चश्मा, मुस्कराता हुआ चेहरा, क्या बता सकते हो यह चित्र कौन से महान् वैज्ञानिक का है?"

एक छात्र ने उत्तर दिया—"मैं बता सकता हूँ गुरुजी।"

"बताओ।" अध्यापक महोदय ने कहा।

छात्र ने उत्तर दिया—"यह चित्र वनस्पति विज्ञान मे योग-दान देने वाले महान् वैज्ञानिक श्री पचानन महेश्वरी का है।"

"क्या यह भी बता सकते हो, इनका जन्म कब और कहाँ हुआ था? और इनकी प्रारम्भिक शिक्षा किस प्रकार हुई थी?"

"क्यो नही, गुरुजी?" छात्र ने उत्तर दिया और बोला—"इनका जन्म ९ नवम्बर सन् १९०४ को जयपुर (राजस्थान) मे हुआ था। इनके पिता का नाम विजयलालजी था। आरम्भ से ही किसी विषय को लेकर उस पर गहनतम विचार करने की इनकी प्रवृत्ति थी। पिता ने इनको जयपुर मे एक अच्छे स्कूल मे प्रविष्ट करा दिया। वहा इन्होने पूर्ण लगन के साथ अच्छे अक प्राप्त किये।

"प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्हें इलाहाबाद के इविंग क्रिश्चियन मे दाखिल कराया गया। वहाँ रह कर इन्होने लगन मे शिक्षा का अध्ययन किया। इनसे कालेज के अध्यापक प्रभावित हुए और इन्हें विश्वास हो गया कि एक न एक दिन महेश्वरी महान वैज्ञानिक बनेगा।

"वैसा ही हुआ जैसा उनकी इनके प्रति धारणा थी। कालेज से निकल कर इन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे अपना अध्ययन काय शरू किया। एम० ए० मे विज्ञान ही इनका विषय था। विज्ञान के क्षेत्र मे इन्होने अपना एक प्रतिष्ठित स्थान बना लिया। सन् १९२७ मे इन्होने एम० एस-सी० की परीक्षा मे सफलता प्राप्त की। पाच वष तक इन्होने विज्ञान के क्षेत्र मे अनुसधान किया। पेड-पौधो पर अपना अनुसधान काय करते हुए सन् १९३१ मे इन्होने डाक्टर ऑफ साइस की उपाधि प्राप्त की।

"सन् १६२८ मे इन्हे इविंग क्रिश्चियन कालेज मे प्राध्यापक की नौकरी मिल गई थी। इसी बीच इन्होंने अध्यापन काय करते हुए अपना शुभ काय भी किया था। जिसका फल इन्ह सन् १६३१ मे उपाधि प्राप्त करके मिला। तीन वर्ष तक उसी कालेज मे इन्होने पूर्ण निष्ठा से काय किया।"

"उसके बाद इन्होने क्या किया ?" एक छात्र ने पूछा।

छात्र ने उत्तर दिया—"महेश्वरी जी आजीवन शिक्षक रहे। इलाहाबाद से सन् १६३० मे ये आगरा आ गये। वहाँ आकर इन्होने आगरा कालेज मे नौकरी कर ली। इस प्रकार अध्यापन काय करते हुए ये ढाका विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक के स्थान पर नियुक्त हुए। वहाँ पर भी ये अपने पौधो भ्रूण के विज्ञान का शोध कार्य निरन्तर करते रहे।

"सन् १६४७ को भारत स्वतन्त्र हुआ। उसके साथ ही देश का बटवारा हो गया। ढाका विश्वविद्यालय पूर्वी पाकिस्तान के क्षेत्र मे चला गया। उससे आपको अत्यन्त दुख हुआ। उन्ही दिनो भारत सरकार ने दिल्ली के दिल्ली विश्वविद्यालय मे वनस्पति विभाग खोला था। आप उन दिनो दिल्ली आ गये थे। आपकी योग्यता तथा अनुसधान काय को देखकर दिल्ली विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग का आपको अध्यक्ष बना दिया गया। आपने उस समय अनेक चमत्कारिक शोध कार्य किये। अपने शिष्यो के सहयोग स आपने अपने अनुसधान कार्य मे सफलता प्राप्त की।

"आपने अनेक लेख अपने अनुसधान कार्य पर लिखे। पत्र-पत्रिकाओ मे जब उनका प्रकाशन हुआ तो आपकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। आप वास्तव मे पहले भारतीय वैज्ञानिक हैं जिन्होने पाधो के प्लाट एम्ब्रियोलोजी का क्षेत्र अपनाकर उसमे शोध कार्य किया। आपने अनेक पुस्तकें इस विषय से सम्बन्धित लिखी

जिनमे 'नटिम' 'आवृत बीजी पौधो के भ्रूणो का परिचय' और 'भारत के आर्थिक पौधो का कोष' आदि है।"

"क्या बता सकते हो कि इन्होने भ्रूण विज्ञान के ततु और अग तकनीक का सफल प्रयोग कब किया ?" अध्यापक ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न का उत्तर छात्र न दे सके तो अध्यापक महोदय ने स्वय बताना शुरू किया, "आओ, तो मैं इसके विषय मे बताता हूँ। सन १९५६ की बात है। डा० महेश्वरी पौधो के भ्रूणो की क्रिया की ओर आकर्षित हुए। इन्होने उस विषय पर अनुसधान काय करना आरम्भ कर दिया। ये पौधों की हर क्रिया को जानने के आकाक्षी थे। ये मालूम कर चुके थे कि पौधो मे भी मानव की भाति जीव होते है। आपने बीजो पर जो प्रयोग किये उनसे आपकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई। इस प्रकार आपने अपने काय मे पूणरूपेण सफलता प्राप्त की। आपने जो प्रयोग किये उनमे ये विशेष हैं—विवृत बीज वाले पौधे, आवृत बीज, क्रिप्टोगम आदि।

"डा० महेश्वरी की सदैव यही इच्छा बनी रहती थी कि भारत मे वे विज्ञान को अधिक से अधिक योग देकर उसका विकास करें। विज्ञान के विद्यार्थियो को हर प्रकार का सहयोग देने के लिए ये सदैव तत्पर रहते थे। इन्होने अपने शिष्यो की सहायता से 'वनस्पति विज्ञान' को उच्चकोटि पर पहुँचा दिया। अपने काय के समय कभी इन्होने थकान व निराशा का अनुभव नही किया। ये जानते थे कि प्रयत्नशील व्यक्ति ही जीवन मे कुछ कर सकता है और इसी भावना ने एक दिन इन्हे भी उच्चकोटि का वैज्ञानिक बना दिया।"

"क्या इन्होने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी वनस्पति विज्ञान का विकास किया ?" एक छात्र ने पूछा।

"हाँ, उसी के फलस्वरूप सयुक्त राष्ट्र सघ की शिक्षा विज्ञान एव सस्कृति समिति द्वारा पौधो के ततु और अगो के विकास का भार इन्ही पर आ पडा था। इन्होने उसमे अपना पूर्ण योगदान दिया। इतना ही नही, इन्होंने और भी शोध काय करके विज्ञान के क्षेत्र मे रहस्य खोले।"

"फिर तो इन्हें भी काफी पुरस्कार मिले होगे ?"

"जो व्यक्ति रचनात्मक काय करते हैं उन्ह सम्मानित किया ही जाता है। डा० महेश्वरी को भी अनेक सस्थाओ द्वारा सम्मानित किया गया। कई अकादमियो और सस्थाओ के ये सभासद रहे है। आपको भारतीय वोटेनिकल सोसायटी द्वारा 'बीरबल साहनी' पदक प्रदान किया गया। इतना ही नही, 'नेशनल इस्टीट्यूट ऑफ साइस ऑफ इण्डिया ने भी आपके शोध कार्यो से प्रभावित होकर आपको सम्मानित किया। इसी प्रकार अनेक प्रतिष्ठित सस्थाओ का पुरस्कार प्राप्त करते हुए आप अपने कार्य मे दिन प्रतिदिन उन्नति की ओर अग्रसर होते रहे हैं।

" विदेशी सस्थाओ के भी सभासद रह कर आपने भारत का नाम उज्ज्वल किया है। आप अमरीका की 'अकादमी ऑफ आर्ट्स एण्ड साइस' के सभासद रहे। जमन अकादमी तथा लदन की रायल सोसायटी के सभासद रहकर आपने अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया है। इतना ही नही, अमरीका के मैकगिल विश्व विद्यालय ने डॉक्टर की उपाधि देकर आपको सम्मानित किया। इस प्रकार आप विश्व-भर मे प्रतिष्ठित हो गये। यह सब इनके शोध काय, लगन, साहस एव अथक परिश्रम का ही परिणाम था जिसने विश्व भर मे इन्ह प्रसिद्ध कर दिया। उसी बीच इन्होने अमरीका और योरोप के देशो की यात्रा की। इण्डोनेशिया, मिस्र व रूस आदि का भ्रमण करके इन्होने वनस्पति विज्ञान का काफी प्रचार किया।

" डॉ० महेश्वरी इस प्रकार वनस्पति विज्ञान के जन्मदाता कहलाने लगे। सन् १६६६ में इनका स्वास्थ्य खराब हो गया बीमारी के दिनो मे भी ये चैन न लेते थे। उसी बीमारी के दौरान एक दिन १८ मई सन् १६६६ को इनका देहान्त हो गया।

डा० पचानन महेश्वरी ने पौधो के रचनात्मक कार्य से विज्ञान को जो अमूल्य वस्तु दी है उससे भारत का नाम उज्ज्वल हुआ है इसमे कोई सन्देह नही। हमे भी इन्ही वैज्ञानिको की भाँति उन्नति की ओर अग्रसर होना है। आज डॉ० महेश्वरी तो हमारे बीच नही है लेकिन इनके शोध-कार्य हमारे सामने हैं जिनसे हमे प्रेरणा मिलती है।

डॉ० होमी जहाँगीर भाभा

डॉ० भाभा का चित्र सामने आते ही सभी विद्यार्थियो के चेहरे उदास हो गये। सभी की आखो मे आसुओ की झलक।

दिखाई देने लगी। लगता था जैसे अतीत की कोई शोक-भरी बात उन्हें याद आ गई हो।

"बात ऐसी ही थी। जनवरी १९६६ में हमारे देश का विश्व-विख्यात महान् वैज्ञानिक होमी जहाँगीर भाभा संसार से विदा हो गया था। वह दुखपूर्ण घटना ऐसी थी जिसने भारत के सभी नागरिकों को शोक से भर दिया था।"

अध्यापक महोदय ने जब विद्यार्थियों की ओर देखा तो उनकी आँखें भी भर आईं। इससे पूर्व कि वे कुछ कहते, एक विद्यार्थी बोला—"गुरु जी ! आज भारत माँ के सपूत, महान वैज्ञानिक होमी जहाँगीर भाभा तो हमारे बीच नहीं रहे लेकिन उनके महान कार्य हमें उनकी याद दिला रहे हैं।"

"तुम ठीक कहते हो अशोक !" अध्यापक महोदय ने कहा। और पुनः बोले—"क्या तुम इनके विषय में अपने साथियों को कुछ बता सकते हो ?"

"अवश्य बताऊँगा, गुरुजी !" छात्र अशोक ने उत्तर दिया। और अपने साथियों की ओर देखा। फिर चित्र की ओर देख कर बोला—

"डॉ० होमी जहाँगीर भाभा का जन्म ३० अक्टूबर १९०९ को बम्बई (महाराष्ट्र) में हुआ। इनका परिवार पारसी था। आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण परिवार की गणना प्रतिष्ठित परिवारों में थी।

"बम्बई के कथीड्रिल एवं जॉन केनन हाई स्कूल में इन्होंने अपनी शिक्षा का प्रारम्भ किया। हाई स्कूल करने के बाद इन्होंने एलफिस्टन कालिज में प्रवेश किया। उसके बाद इंस्टीट्यूट आफ साइंस से शिक्षा प्राप्त कर १७ वर्ष की आयु में ये कैम्ब्रिज चले गए।

"प्रारम्भ में डा० भाभा गणित में अधिक रुचि लेते रहे। उसके

बाद यान्त्रिक विज्ञान एव इजीनियरिंग मे इनकी रुचि बढती गई और इस विषय को लेकर इन्होने जो परीक्षा दी उसम इन्हे प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई। उसी के फलस्वरूप इ हे गणित मे 'रामजवाल' छात्रवृत्ति मिली। उसका परिणाम यह हुआ कि ख्याति प्राप्त भौतिक शास्त्री पाली इनसे अत्यधिक प्रभावित हुए और उ होने इन्हे अपने साथ काय करने की अनुमति दे दी। श्री पाली के साथ इन्होने जो कार्य किया वह सराहनीय था। उसके बाद इन्हे एनरिको धर्मी से साथ काम करने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्री एनरिको धर्मी परमाणु विज्ञानी थे। वे रोम म थे। वही डॉ० भाभा ने उनके साथ रहकर अनेक अनुसधान काय किये। उसके बाद इन्होंने जो काय किया उससे ये विश्व भर की दृष्टि मे आ गये।

"इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर हिटलर ने उन्हे आमन्त्रित किया। यह बात सन् १९३७ की है। उन दिनो हिटलर के वज्ञानिक कॉस्मिक किरणो पर अनुसधान कर रहे थे। डॉ० भाभा ने उनके सम्पर्क मे आकर उनके साथ रचनात्मक कार्य करना आरम्भ कर दिया। और इस प्रकार इन्होने कई महत्वपूण काय कर दिखाये। कॉस्मिक किरणो पर काय करके इन्होंने एक नये कण की घोषणा की जिसका नाम 'मीसोन' रखा गया।"

"कणों की अधिक रुचि ने ही डॉ० भाभा को 'क्वाटम सिद्धान्त' की ओर अग्रसर किया। उसके बारे मे अनुसधान करते हुए एक समस्या उत्पन्न हो गई। जानते हो, वह क्या थी?"

एक विद्यार्थी ने उत्तर दिया—"मै जानता हूं।"

और उसने बताया—"किसे कण कहा जाए और किसे रग।"

"वाह! फिर तो तुम भी इनके जीवन स भली भाँति परिचित लगते हो?" अध्यापक महोदय ने प्रसन्नतापूवक कहा।

छात्र ने कहा—"हां गुरुजी ! अपने महान वैज्ञानिक डा० भाभा के बारे में कौन ऐसा विद्यार्थी होगा जो न जानता हो। विद्यार्थी ही नहीं, भारत का प्रत्येक नागरिक इनके जीवन से अच्छी तरह परिचित है, अगर नहीं तो नाम और काम से अवश्य है। आगे इनके विषय में बताना चाहता हूँ।"

और आज्ञा पाकर उसने बताना शुरू किया—

"विदेश से जब डा० भाभा स्वदेश लौटे तो द्वितीय महायुद्ध का भय विश्व पर छाया हुआ था। प्रत्येक देश का ध्यान महान वैज्ञानिकों की ओर था। वे किसी न किसी नवीन वस्तु की खोज के विषय में जानना चाहते थे जो युद्ध में सहायक हो सके। डा० भाभा भी चाहते तो कुछ न कुछ कर दिखाते। लेकिन वे विश्व-शान्ति के पक्ष में थे।

"जब वे स्वदेश आये तो बंगलोर के 'इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ साइंस' के अध्यक्ष डा० सी० वी० रामन ने इन्हें अपने यहां आमन्त्रित किया डा० रामन विख्यात वैज्ञानिक थे। उन पर डा० भाभा का जो प्रभाव पड़ा उसी के फलस्वरूप उन्होंने इन्हें अपने इंस्टीट्यूट में भौतिकी के रीडर पद पर नियुक्त कर दिया।

"कुछ समय तक इसी पद पर कार्य करते रहने के बाद इन्हें प्राध्यापक का स्थान मिला। और इन्होंने अथक परिश्रम करके अपनी योग्यता का अद्भुत परिचय दिया।

"कौन कह सकता था कि इतनी छोटी आयु में डा० भाभा विश्व में विख्यात हो सकेंगे। वास्तव में छोटी सी उम्र में ही ये कई सोसायटियों के सदस्य व फलो चुने गये। जिसमें लंदन की रायल सोसायटी भी थी।

"सन् १६४२ में इनके अनुसंधान कार्य से प्रभावित होकर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने 'एडम' पुरस्कार देकर इन्हें सम्मानित

का काय होने लगा ।

"डा० भाभा ने राष्ट्र व विज्ञान की सेवा मे स्वय को जुटा कर अपनी विद्वत्ता और देशभक्ति का अद्भुत परिचय दिया। ये महान वैज्ञानिक होने के साथ साथ चित्रकार एव सगीतज्ञ भी थे। साहित्य मे भी रुचि रखते हुए इन्होंने अपने अनुसधान कार्य मे कभी रुकावटें न आने दी।

"जनवरी सन् १९६६ मे विदेश से लौटते समय इण्डियन एयरवेज़ का विमान, जिसमे ये यात्रा कर रहे थे, काचनजघा के माउट ब्लैंक पर दुघटनाग्रस्त हो गया। और भारत माँ का सच्चा सपूत हमेशा के लिए हिमराशि मे सो गया। उसी मास इनसे दो सप्ताह पूव भारत के प्रधान मत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ताशकद मे परलोक सिधार गये थे। उनका शव तो भारत लौट आया, किन्तु डा० भाभा का शव सदैव के लिए बफ की गोद मे समा गया।

"डा० भाभा आज हमारे बीच नही हैं। लेकिन 'भाभा अनुसधान केन्द्र' मे आज भी उनका रूप दिखाई देता है।"

हरगोविन्द खुराना

"और यह चित्र है हमारे देश भारत के महान् वैज्ञानिक श्री हरगोविन्द खुराना का, जिन्हें इनके अनुसंधान कार्यों पर

सन् १९६८ में नोबेल पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार इन्हें शरीर क्रिया विज्ञान व चिकित्सा के महत्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रदान किया गया था।

"यद्यपि डॉ॰ खुराना ने अमरीका की नागरिकता स्वीकार कर ली, फिर भी अपने देश भारत से उन्हें अत्यधिक प्रेम है। इन्होंने विश्व में भारत के नाम को रोशन किया है।" अध्यापक महोदय ने बताते हुए पूछा—"क्या तुम इनके विषय में भी जानते हो?"

विद्यार्थी अशोक ने उत्तर दिया—"मैं इनके विषय में बता सकता हूँ।"

और गुरुजी की आज्ञा पाकर अशोक ने कहना शुरू किया, "डा॰ हरगोविन्द खुराना का जन्म रायपुर गाँव में, जो आजकल पश्चिमी पाकिस्तान में है, ९ जनवरी सन् १९२२ को हुआ था। इनके पिता का नाम लाला गणपत राय था। वे पटवारी थे। खुराना पाँच भाई-बहन थे। अपने चारों भाइयों में ये सबसे छोटे थे। अतः माँ कृष्णा देवी का इनके प्रति अत्यधिक स्नेह था।

"प्रारम्भिक शिक्षा के लिए इन्हें गाँव के स्कूल में ही दाखिल कराया गया। पढ़ने में इतने योग्य निकले कि छोटी श्रेणी में ही इन्हें छात्रवृत्ति मिलने लगी। इसी प्रकार अपनी लगन और विश्वास से खुराना ने मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की।

"छोटी सी उम्र में ही खुराना के साथ एक दुखद घटना घटी। इनके पिता का देहान्त हो गया। उस समय इनकी आयु सिर्फ बारह वर्ष की थी। पिता की मृत्यु से घर की आर्थिक स्थिति खराब हो गई। इनकी माता धार्मिक विचारों की निष्ठावान स्त्री थी। उसने साहस से काम लिया और ज्यों-त्यों कर

घर का कर्य चलाना शुरू किया। खुराना के दो बड़े भाइया ने बाहर जाकर नौकरी कर ली। इसी बीच उन्होंने अपनी बहन की शादी कर दी।

"हाँ, तो आठवी मे प्रथम आने के बाद इन्हे मुलतान नगर भेज दिया गया। वहाँ डा० ए० वी० स्कल मे इन्होंने दाखिला ले लिया। खुराना ने अपनी शिक्षा का कार्य सच्ची लगन से किया। प्रतिभाशाली छात्र से सभी अध्यापक प्रसन्न थे। वे जानते थे एक दिन खुराना उन्नति से शिखर पर अवश्य पहुँचेगा। उन्होंने खुराना की हर प्रकार से सहायता करनी आरम्भ कर दी।

"अपनी शिक्षा का काय करते हुए छोटी उम्र मे ही बडी-बडी पुस्तको का अध्ययन इन्होने आरम्भ कर दिया। इससे उनका ज्ञान बढता चला गया लेकिन मैट्रिक की परीक्षा मे जब अच्छे अक प्राप्त न हुए तो खुराना को अत्यधिक दु ख हुआ। पास होना ही कोई विशेष बात न थी। प्रथम श्रेणी से परीक्षा न उत्तीण करना उनके लिए दु ख का कारण था। यद्यपि इन्होने अच्छे नम्बर प्राप्त किए थे। लेकिन प्रथम आने वाले छात्र के कुछ नम्बर उनसे अधिक थे। विश्वविद्यालय मे इन्हें दूसरा स्थान मिला था।'

"मैट्रिक पास करने के बाद इन्होने किस कालिज मे दाखिला लिया था ?" एक छात्र ने पूछा।

"लाहौर के डी० ए० वी० कालिज मे।" अशोक ने उत्तर दिया। बोला—"लाहौर के डी० ए० वी० कालिज की दूर दूर तक धाक थी। उसी कालिज से इन्होने सन् १९४३ मे बी० एस-सी० की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की। उसके बाद सन १९४५ मे गवनमेट कालिज लाहौर से एम० एस सी० आनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण करके इन्होने अपने जीवन का

नया रास्ता तैयार किया।"

"उसके बाद डा० खुराना ने अपना शोध-कार्य कहाँ से आरम्भ किया ?"

"यह बात सन १६४६ की है जब कुछ विद्यार्थियों को शोध काय करने के लिए विदेश भेजा गया। इनमे डॉ० खुराना भी थे। डॉ० खुराना ने इगलैंड के लिवरपूल विश्वविद्यालय मे अपना शोध कार्य आरम्भ किया। उनकी आर्थिक दशा अच्छी न थी। अत फजूलखर्ची के ये विरोधी थे। इतना ही नही, अधिकतर कार्य ये स्वय ही किया करते थे। सादा जीवन बिताते हुए इन्होंने अपने शोध काय को प्रगति की ओर अग्रसर किया।

"इनके विदेश जाने के एक वर्ष बाद ही भारत को आजादी मिल गई। उन दिनो ये लिवरपूल विश्वविद्यालय मे अपना शोध काय कर रहे थे। देश का बँटवारा हो गया। जब खुराना को ज्ञात हुआ कि उनका जन्मस्थान पश्चिमी पाकिस्तान में चला गया है और उनका एकमात्र परिवार सदैव के लिए मुल्तान छोडकर दिल्ली आ गया है तो उन्हें अत्यधिक दुख हुआ। देश के बँटवारे के ये विरोधी थे। लेकिन कर क्या सकते थे।

"दो वर्ष तक लिवरपूल विश्वविद्यालय मे शोध-काय करने के बाद सन् १६४८ मे इन्होने पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली।

"उसके बाद डा० वी० प्रलाग के साथ इन्होने शोध-काय निष्ठापूवक करना आरम्भ कर दिया। डाक्टर प्रलाग उन दिनो फेडरल इंस्टीटयूट आफ टैक्नालॉजी मे प्रोफेसर थे। डा० खुराना से वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और अपने अधीन उन्होने इन्हे शोध-काय करने की अनुमति दे दी थी।

" भारत लौटने पर डा० खुराना को नौकरी करने की चिंता हुई। इन्होंने नौकरी के लिए प्रयत्न करना आरम्भ किया किन्तु कही भी इन्हे नौकरी न मिल सकी। इसी प्रकार तीन मास तक ये नौकरी के लिए भटकते रहे। जब कहीं भी इन्हें नौकरी न मिली तो ये निराश हो गये और इन्होंने विदेश जाकर कार्य करने का निश्चय कर लिया।

" जब इन्होंने अपनी माँ तथा भाइयो के सामने विदेश जाने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने मना कर दिया। एक तो आर्थिक दशा ठीक न थी, दूसरे, मा नही चाहती थी कि उनका बेटा विदेश मे रहकर नौकरी करे। लेकिन इनके बडे भाई नन्दलाल खुराना इनसे अधिक स्नेह करते थे। भाई की इच्छा को वे दबा न सके और उन्होंने जो थोडा बहुत धन जुटाकर रखा था अपने भाई को दे दिया। बडे भाई का स्नेह देख कर हरगोविन्द खुराना गद्गद हो उठे। और भाई से अनुमति लेकर ये इगलैण्ड चले गये।

" उन दिनो इगलैण्ड के कैम्ब्रिज मे एलेक्ज़ेंडर टोड शोध कार्य कर रहे थे। वे नोबेल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक थे। उन्ही के साथ रह कर डा० खुराना को शोध-कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके बाद सन १९५२ मे ये कनाडा चले गये। वहा ब्रिटिश कोलम्बिया अनुसधान परिषद मे आर्गेनिक कमिस्ट्री ग्रुप के विभागाध्यक्ष नियुक्त हो गये। उसी वर्ष वहाँ स्विस ससद सदस्य से इनकी भेंट हो गई। वे इनसे अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी पुत्री एस्थर का विवाह इनसे कर दिया।

" श्रीमती एस्थर पी एच० डी० की उपाधि से सम्मानित थी। उसके कुशल एव व्यावहारिक होने से डा० खुराना को अपने कार्य मे बहुत सहायता मिली। अपने शोध कार्य मे पत्नी का सहयोग पाकर वे अत्यधिक प्रसन्न थे।"

"डा० खुराना ने सवप्रथम कौन-सी खोज की ?" एक छात्र ने पूछा ।

अशोक ने उत्तर दिया—"इन्होने कोलम्बिया मे काय करते हुए जो महत्वपूण खोज की वह थी को एन्जाइम 'ए' का विश्लेपण। यह खोज डा० फ्रिज लिपमैन ने की थी जिसका विश्लेषण कर इन्होने सबको आश्चर्यचकित कर दिया। उसी खोज के कारण विज्ञान-जगत मे ये प्रसिद्ध हो गये।

"कोलम्बिया मे काय करते हुए डा० खुराना ने कैम्ब्रिज, लास एंजिल्स, स्वीडन, मास्को, बर्कले तथा न्यूयाक के विश्व विद्यालयो से भी सम्पर्क बनाये रखा। सन् १९५८ मे इनके शोध काय से प्रभावित होकर इन्हे 'मक' पुरस्कार प्रदान किया गया।

"इन्होने अपने शोध काय पर कई पुस्तक व लेख आदि लिखे। उन लेखो की प्रशसा विश्व भर मे हुई। अपने अनुसधान कार्य मे इन्होने प्रोटीन सश्लेपण तथा जेनेटिक कोड की महत्व पूण व्याख्या की। चिकित्सा और शारीरिक क्रिया मे भी इन्होने जो महत्वपूण कार्य किया उसने इनको विश्व के महान् वैज्ञानिको की श्रेणी मे ला खडा किया। उसी के फलस्वरूप सन् १९६६ मे इन्हे नोबेल पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया था। सन् १९६० मे इस्टीट्यूट आफ पब्लिक सर्विस द्वारा इन्हे स्वण पदक देकर सम्मानित किया गया था। इतना ही नही, कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने इन्हे 'लुइसाग्रौस हारविन्स पुरस्कार' प्रदान कर सम्मानित किया। 'अलबर्ट लास्की औपधि अनुसधान पुरस्कार भी आप ही को प्राप्त हुआ है।

"भारत के इस महान् वैज्ञानिक ने अपने देश का नाम ऊँचा किया यह हमारे लिए गौरव की बात है। भारत के राष्ट्रपति ने २६ जनवरी १९६९ को गणतन्त्र दिवस के अवसर पर इन्हे 'पद्म-विभूषण' के राष्ट्रीय अलकरण से विभूपित कर इनका सम्मान

किया। उसी मास जबलपुर विश्वविद्यालय ने इन्हे डी० एस-सी० की उपाधि प्रदान की। उस समय डॉ० खुराना वहाँ उपस्थित न थे, फिर भी इन्हे सम्मान देकर भारत माँ के सपूत को प्रोत्साहित किया गया।

"डॉ० खुराना ने अनेक महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य किये हैं। आज भी ये अपने अनुसधान कार्य मे पूर्णतया रत हैं। यद्यपि ये आज भी विदेश मे हैं, फिर भी भारतीय वैज्ञानिक के नाम से विश्व मे प्रसिद्ध हैं।

"यह थे डा० खुराना जिन्होने विज्ञान जगत को कई अमूल्य वस्तुएँ भेट की हैं। और अब हम तुम्हे डा० साराभाई के विषय मे बताते है।"
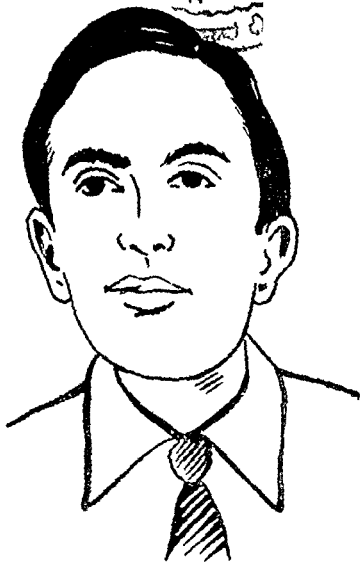
'और ये हैं भौतिक विज्ञान के विश्वविख्यात विद्वान और भारतीय अणु-शक्ति आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० विक्रम

अम्बालाल साराभाई जिनके आकस्मिक निधन से परमाणु ऊर्जा अनाथ हो गया। ऐसे समय में जब कि देश की अंतरिक्ष और परमाणु प्रगति को इनकी अत्यधिक आवश्यकता थी, ये हमारे मध्य से अचानक ५२ वर्ष की आयु में ३० दिसम्बर १९७१ को हमेशा के लिए उठ गये। इनके आकस्मिक निधन से जो क्षति हुई है उसकी कभी पूर्ति न हो सकेगी।"

अध्यापक महोदय के कहते कहते सभी विद्यार्थियों का हृदय वेदना से भर उठा।

कुछ क्षण मौन छाया रहा।

फिर अध्यापक महोदय ने पुनः कहा—"डॉ० साराभाई ने परमाणु शक्ति के क्षेत्र में डॉ० भाभा के सपनों को साकार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इतना ही नहीं, परमाणु शक्ति के अगले चरणों का भी इन्हें पूरा ख्याल था।"

"डॉ० साराभाई का जन्म कहाँ हुआ था गुरुजी?" एक छात्र ने खड़े होकर पूछा।

अध्यापक महोदय बोले—"डॉ० साराभाई का जन्म १२ अगस्त १९१९ को अहमदाबाद में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा अहमदाबाद में गुजरात कॉलिज से पूर्ण की। सन् १९३९ में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के सेंट जॉन कालिज से प्राकृतिक विज्ञान की डिग्री प्राप्त करने के बाद इन्होंने सन् १९ ९ से १९४५ तक सर सी० वी० रामन के साथ ब्रह्माण्ड किरणों पर 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स' बंगलौर में शोध कार्य किया। इसमें इन्हें सफलता प्राप्त हुई। अपने कार्य में ये निरंतर लगन और साहस के साथ आगे बढ़ते रहे।

"ब्रह्मांड किरणों पर शोध कार्य करने के बाद सन १९४५ से १९४७ तक प्रकाश विखंडन के क्षेत्र में कवेंडिश प्रयोगशाला (कैम्ब्रिज) में अपने कार्य में रत रहे और वहीं से इन्होंने

पी एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।"

"गुरुजी, डॉ० साराभाई अहमदाबाद टेक्सटाइल इंडस्ट्री रिसर्च एसोसिएशन के अंशकालिक अवैतनिक निदेशक भी तो रहे थे?"

"हां।" अध्यापक महोदय ने उत्तर दिया—"सन् १९५६ से उन्होंने उस स्थान पर पूर्ण निदेशक के रूप में कार्य किया। इतना ही नहीं, सन् १९६७ से १९७१ के मध्य ये भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला तथा अहमदाबाद में ब्रह्मांड विकिरण भौतिकी के अध्यापक रहे। अनुसंधान कार्य में रत रहते हुए इन्होंने जो प्रयोग किये उन्हीं के फलस्वरूप इन्हें सन् १९६२ में भौतिकी के क्षेत्र में 'शांतिस्वरूप भटनागर स्मृति' पुरस्कार प्रदान किया गया। उसी वर्ष में भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

"सन १९६२ से १९६६ तक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, अहमदाबाद में निदेशक के रूप में इन्होंने कार्य किया। इसी के मध्य ये भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला अहमदाबाद के निदेशक और केन्द्रीय मंत्रिमंडल की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सदस्य रहे।"

"इन्हें पद्मभूषण की उपाधि से भी तो अलंकृत किया गया था?" एक छात्र ने पूछा।

"हां।" अध्यापक महोदय ने बताया—"सन १९६६ में सरकार ने इनके कार्यों की सराहना करते हुए इन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया था। विश्व भर में इनके अनुसंधान कार्यों की प्रशंसा होने लगी। इसी वर्ष इन्हें परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। सन् १९६८ में ये विज्ञान और टेक्नोलॉजी समिति के सदस्य चुने गये। सन १९६९ में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के अध्यक्ष पद का इन्होंने कार्यभार

सँभाला।

"डॉ० साराभाइ १९७० मे अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा सस्थान की आम सभा के अध्यक्ष पद पर काय करते हुए सन् १९७१ मे परमाणु शक्ति के शान्तिपूर्ण उपयोग के चौथे जिनेवा सम्मेलन के उपाध्यक्ष चुने गये। इस प्रकार डा० साराभाई अनेक सस्थाओ के सदस्य अध्यक्ष, उपाध्यक्ष रहे।

"डॉ० विक्रम साराभाई जितना विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगो पर विचार-विमर्श करते थे उतना ही सामाजिक समस्याओ के प्रति भी जागरूक थे। इसीलिए ये खेती-वाडी के लिए टेली-विजन, परिवार-नियोजन तथा शिक्षा प्रसार का प्रबल समथन करते थे। इनका कहना था कि जब तक विज्ञान समाज के लिए उपयोगी नही बनेगा तब तक विज्ञान की प्रगति केवल कागजी ही है। उस पर खच किया गया पैसा समाज के किसी उपयोग का नही। इतना ही नही, वे कहा करते थे कि वज्ञानिक प्रगति के लिए विचार-विमश अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक को अपने ही विषय तक सीमित नही रहना चाहिए।

"डॉ० साराभाई ने डॉ० भाभा की दुघटना मे मृत्यु के बाद अणुशक्ति आयोग की अध्यक्षता सँभाल कर अणुशक्ति के शान्तिपूण कार्यो मे उपयोग के कायक्रम को उत्साहपूवक आगे बढाया। भारत के अतरिक्ष अनुसधान कायक्रम के सम्बन्ध मे यदि यह कहा जाय कि डॉ० साराभाई ने ही भारत के अतरिक्ष कायक्रम के प्रत्येक चरण की योजना बनाई और उसे कार्यान्वित किया, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

"थुम्बा राकेट स्टशन के उदघाटन समारोह तथा कुछ अन्य सम्मेलनो मे भाग लेने के लिए डॉ० साराभाई २८ दिसम्बर १९७१ को वहाँ पहुँचे थे और वही ३० दिसम्बर १९७१ की प्रात त्रिवेन्द्रम से १५ कि० मी० दूर कोवल्लम पैलेस होटल मे अपने

कक्ष मे वे मृत पाये गये ।

"कहा जाता है कि रात काफी देर तक इन्होने अपना कार्य किया और सो गए। प्रात जब नौकर चाय देने गया तो उनका कमरा बन्द था। कुछ सदेह हो जाने के कारण कक्ष का दरवाजा तोडा गया। उस समय डॉ० साराभाई अपने बिस्तर पर मृत पडे थे।

"थुम्बा प्रक्षेपण केन्द्र के चिकित्सा अधिकारी डा० थॉमस वर्गीज ने जब डा० साराभाई के शव की जाँच की तो मालूम हुआ, उनका देहान्त हृदय गति रुक जाने के कारण हुआ था। अचानक इनकी मृत्यु का समाचार पाकर सारा देश शोकातुर हो उठा था।

"डॉ० साराभाई की पत्नी श्रीमती मृणालिनी उस समय बम्बई मे थी। वे एक सुप्रसिद्ध नतकी है। उनकी पुत्री मल्लिका जो एक फिल्म तारिका है अपने पिता के निधन का समाचार पाकर फूट फूट कर रो पडी। उनका पुत्र कार्तिकेय पिता की मृत्यु पर बिलख उठा था।

"जिस समय त्रिवेन्द्रम से डॉ० साराभाई का शव विमान द्वारा अहमदाबाद लाया गया। उनकी पत्नी, पुत्री और पुत्र भी उनके साथ थे।

"जिस मिट्टी मे पलकर साराभाई बडे हुए वही साबरमती नदी के तट पर, हनसोल ग्राम के समीप उनके परिवार के फाम पर उनका दाह सस्कार किया गया, ग्रीर सदैव के लिए ये उसी मिट्टी मे विलीन हो गये।

"आज विक्रम साराभाई हमारे मध्य नही हैं लेकिन विज्ञान जगत व समाज को उन्नति की ओर अग्रसर करने वाले उनके महत्वपूण कार्य हमे सदैव उनकी याद दिलाते रहेगे।

"ये थे डॉ० विक्रम साराभाई जिन्हे हमारा देश कभी भूल न

सकेगा। ऐसे महान वैज्ञानिकों ने अनेक शोध-कार्य करके अपने देश भारत का नाम उज्ज्वल किया है। तुम भी विद्यार्थी हो, विज्ञान के छात्र हो। तुम्हें भी अपने इन्हीं वैज्ञानिकों की भाँति कार्य करके अपने देश भारत की उन्नति की ओर अग्रसर करना है। यदि तुम भी इन्हीं वैज्ञानिकों की भाँति सदैव प्रयत्नशील रहे तो एक दिन तुम भी महान् वैज्ञानिक बन सकोगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।"

डा० होमी नौसेरवाजी सेठना

"अब हम तुम्हे एक ऐसे वैज्ञानिक के विषय में
जिसने १८ मई को राजस्थान के पोकरण क्षेत्र मे

विस्फोट करके भारत का नाम महान् परमाणु राष्ट्रों की श्रेणी में जोड़ दिया।

"बच्चो! यह जो चित्र तुम देख रहे हो उसी महान् भारतीय वैज्ञानिक का है। जानते हो, इनका नाम क्या है?"

एक बच्चे ने खड़े होकर चित्र देखते हुए बताया—"गुरुजी, यह तो डा० सेठना का चित्र है।"

अध्यापक इस उत्तर से प्रसन्न हुआ। बोला—"तुमने ठीक बताया। इस वैज्ञानिक का पूरा नाम डा० होमी नौसेरवाजी सेठना है।

"हमारे देश को विश्व में जिन वैज्ञानिकों ने प्रतिष्ठित किया है उन्हें हम कैसे भूल सकते हैं। आज विज्ञान का युग है। हर देश विज्ञान क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है। अब तक विश्व में पाँच ही ऐसे राष्ट्र थे जिन्होंने परमाणु बम बनाने में सफलता प्राप्त की थी। और जिनके नाम की चर्चा विश्व के हर छोटे-बड़े राष्ट्र में होने लगी थी। उन राष्ट्रों में अमरीका, रूस, इंग्लैंड, फ्रान्स तथा चीन हैं। इन राष्ट्रों ने परमाणु-परीक्षण किये और विश्व में परमाणु शक्ति के माध्यम से अपनी धाक जमाई, किन्तु जब भारत ने भी परमाणु बम का विस्फोट किया तो ये राष्ट्र चौंके, और भारत को भी ये परमाणु-शक्ति का शक्तिशाली राष्ट्र मानने लगे।

"इस बात का जो श्रेय है वह डा० सेठना को है। इन्होंने अपने अथक परिश्रम से परमाणु बम का परीक्षण करके विश्व को चकित कर दिया।

"पीछे तुमने डा० साराभाई के विषय में बातचीत की थी। उन्होंने परमाणु शक्ति के विषय में जो प्रयोग किये वे भारत के वैज्ञानिक इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखे गये हैं। उन्हीं डा० साराभाई ने जब वे 'इण्डियन रेयर अर्थ्स लिमिटेड' में काम करते

थे। डा० सेठना भी विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वहीं आकर कार्य करने लगे थे। इनकी मेहनत और कार्यकुशलता से प्रभावित होकर उस समय डा० साराभाई ने इनकी अत्यधिक प्रशंसा की थी।"

"इनका जन्म कब और कहाँ हुआ था?" छात्र ने पूछा।

"इस महान् वैज्ञानिक का जन्म बम्बई में २४ अगस्त, १९२३ को हुआ था।" अध्यापक जी ने उत्तर देते हुए आगे बताया—

"कहावत है पूत के पाँव पालने में पहचाने जाते हैं। यही कहावत डा० सेठना ने चरितार्थ कर दिखाई। बचपन से ही उन्हें पढ़ने लिखने का शौक था। विज्ञान के क्षेत्र में इनकी बुद्धि इतनी विलक्षण थी कि सब चकित रह जाते। इनके माता पिता को अपने पुत्र के विषय में जब यह ज्ञान हुआ कि वह विज्ञान में अधिक रुचि ले रहा है तो इन्होंने अपने पुत्र के रुझान को देखते हुए उसे विज्ञान की शिक्षा दिलाने का निश्चय कर लिया।

"इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बम्बई में हुई। आरम्भ से ही ये योग्य छात्र के रूप में अच्छी श्रेणी के साथ उत्तीर्ण होते रहे। विज्ञान के क्षेत्र में इनकी इतनी रुचि रही कि हर छोटी छोटी बात को ये बड़े ही ध्यान से देखते और उस पर मनन करते। इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करते हुए इन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से बी० एस सी० और बी० एस सी० (टेक्नीकल) की परीक्षाएँ अच्छी श्रेणी में पास की।

"विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण करने के बाद ये विज्ञान क्षेत्र में कोई चमत्कारिक काय करना चाहते थे। इनकी योग्यता एवं विज्ञान क्षेत्र में अटूट रुचि को देखते हुए इन्हें 'इण्डियन रेयर आर्थ्स लिमिटेड' में काय करने का अच्छा अवसर मिल गया।

"अब डा० सेठना अधिक लगन और विश्वास के साथ

कार्य करने में लीन हो गये। उन दिनों स्वर्गीय डा० साराभाई भी इसी संस्थान में काय कर रहे थे। डा० सेठना की लगन और काय को देख वे भी अत्यधिक प्रभावित हुए थे। कुछ ही दिनों बाद डा० सेठना सब की दृष्टि में आ गये। इनके कार्य की सभी ने सराहना की।

"डा० सेठना विज्ञान क्षेत्र में अभी कुछ करने के आकांक्षी थे। इनकी लगन का ही परिणाम था कि सन १९५८ में इन्हे भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में विशेष वैज्ञानिक अधिकारी के स्थान पर नियुक्त कर दिया गया।

"अभी अध्यापक महोदय बात ही कर रहे थे कि एक छात्र ने तुरन्त कहा—"गुरुजी! भारत सरकार ने इन्हें 'पदमश्री' की उपाधि भी तो दी था।"

"हाँ, तुमने ठीक बताया। सन् १९५९ में भारत सरकार ने इनके काय को देखते हुए इन्हे 'पदमश्री' की उपाधि से विभूषित किया था। इतना ही नही, सन् १९६० में इन्हे डा० शान्ति-स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्रदान किया गया। और फिर सन १९६६ में भारत सरकार ने इन्हें पुन 'पदमभूषण' से अलंकृत किया। इसी वर्ष इन्हे भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र का निदेशक नियुक्त किया गया।

"डा०सेठना महान् वैज्ञानिक ही नही वरिक एक अच्छे लेखक भी है। इन्होंने 'नॉलेज विजडम एण्ड करेज टू सर्व' नामक एक पुस्तक की रचना की थी जिस पर सन् १९६७ में मिशिगन विश्व विद्यालय की ओर से इन्हें सेसकी सेन्टीनियल पुरस्कार' प्रदान किया गया।

"एक बात मैं तुम्हे और बताता हूँ। ट्राम्बे में भारत सरकार ने प्लूटोनियम प्लाण्ट लगाने की योजना बनाई थी। यह बात सन १९५९ की है। इस योजना का कायभार सरकार ने

डा० सेठना को सौंपा था। डा० सेठना के लिए यह प्रथम अवसर था जबकि इतने बडे काय को उन्होने अपने हाथ मे ले लिया था। जिस काय को भी हाथ मे लेते थे उसे ये पूर्ण करके ही छोडते थे। सरकार द्वारा सौंपे गये उस प्लाण्ट को सेठना ने अथक परिश्रम से वैज्ञानिको और इजीनियरो की सहायता से सन् १९६४ मे पूर्ण कराया। और उसके साथ-साथ कार्य करते हुए सन् १९६७ मे यूरेनियम मिल का निर्माण कार्य भी पूर्ण करवाया। यह मिल जडुगोडा मे स्थित है।

"इस महान वैज्ञानिक ने भारत में परमाणु बम का विस्फोट करके विश्व को चकित किया। आज विश्व के उच्च कोटि के वैज्ञानिको मे हमारे इस महान् वैज्ञानिक डा० सेठना की गणना होती है। भारत के इतिहास मे ही नही बल्कि विश्व के वैज्ञानिक इतिहास मे यह घटना अविस्मरणीय बनी रहेगी।

"डा० सेठना परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष है। आज भी अपने कार्य में उसी लगन और विश्वास से जुटे हुए है।

"आज का युग एक वैज्ञानिक युग है। रूस, अमरीका, चीन आदि देशो ने विज्ञान मे उन्नति की है। अब हमारा देश भी किसी से पीछे नही है। हमारे भारतीय वैज्ञानिको ने विश्व के उन राष्ट्रो को यह साबित करके दिखा दिया है कि भारत मे भी परमाणु बम बनाने की क्षमता है।

"बच्चो, आज के युग को देखते हुए हमारी सरकार ने हर विद्यार्थी को विज्ञान की शिक्षा देने का जो कार्य-क्रम तैयार करके प्रयोग मे लाने का बीडा उठाया है वह नये भारत के निर्माण मे अवश्य सहायक होगा।

"अब तक जिन वैज्ञानिको के विषय में तुम्हे जानकारी मिली है वे भी तुम्हारी तरह कभी बच्चे थे। शिक्षा ग्रहण कर विज्ञान मे रुचि ली और महान् वैज्ञानिक बनकर भारत की

प्रतिष्ठा बढाई। तुम भी एक महान् वैज्ञानिक बन सकते हो। लगन और विश्वास के साथ विज्ञान मे रुचि लेकर कुछ कर सकने की भावना यदि दिल मे हो तो प्रगति का मार्ग स्वय मिल जाता है। क्या तुम भी महान वैज्ञानिक बनकर अपने देश की प्रतिष्ठा बढाना चाहते हो ?"

सभी विद्यार्थियो ने एक स्वर मे 'हाँ' मे उत्तर दिया। बोले, "हम विज्ञान की शिक्षा लेकर अवश्य महान् वैज्ञानिक बनेंगे। और विश्व मे अपने देश का नाम रोशन करेंगे।"

बच्चो की भावना ने अध्यापक महोदय को प्रसन्न कर दिया। वे बच्चो मे भविष्य के नये भारत की झलक देख रहे थे। बोले—"अपने इन महान् वैज्ञानिकों के जीवन एव कार्य से तुम सब शिक्षा ग्रहण करके एक दिन महान वज्ञानिक बनोगे, मुझे विश्वास है। आओ, अब हम अपनी कक्षा मे लौट चलें।"

और समस्त छात्र वैज्ञानिकों के जीवन से प्रेरणा लेकर अपनी-अपनी कक्षा की ओर चले गये।

●●